प्रशंसनीय बन सक्ता है जिस में इसका वाहुल्य है। यह न्यूनाधिक्य कवि की रुचि पर निर्भर करता है। यद्यपि इतना लिखना अप्रासङ्गिक होने से उचित नहीं था पर किसी विशेष कारण से हमको अपनी अल्प मति का भी परिचय देना पड़ा। पाठक जन क्षमा करेंगे। अब प्रकृतमनुसरामः।

यथार्थ में इन कवियों के सम्बन्ध में अनेक आख्यायिकाएं सुनने में आती है परन्तु इनको सुन कर कवियों की प्रतिभा वा योग्यता का एकदम निश्चय कर लेना अन्याय है। श्रीराघवेन्द्र के लेखक ने जिस श्लोक के लिये सरस्वती के मुख से "कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः" कहलवाया है उसी त्रोटक श्लोक को छतीसगढ़ मित्र वर्ष ३ अंक ९-१० के "दण्डी" शीर्षक लेख में भवभूति का कहा हुआ लिखा गया है। इसके लिखने वाले ने यह बात 'कवि चरित्र" से लिखी है और कहा है "दन्त कथाओं में प्रायः ऐसी ही बे जोड़ बातें पाई जाती हैं"। प्रायः देखा जाता है कि जब किसी पुरुष की प्रतिपत्ति लोक में प्रसिद्ध होने लगती है तब भूतपूर्व पुरुष के सत्कीर्ति सूचक कथानक जो उस समय प्रचलित रहते हैं बदल कर नवीन प्रख्यातनामा के अनुकूल हो जाते हैं अर्थात् जो कथा आज एक पुरुष की प्रशंसा कर रही है वही कल दूसरे की करने लग जाती है यही कारण है कि एक पुरुष के सम्बन्ध में अनेक आख्यायिकाएं सुनने में आती हैं। जहां तक देखा गया है यही सिद्ध होता है कि किम्बदन्ती किसी एक आधार पर स्थिर नहीं रहती। ऐसी दशा में उक्त प्रशंसित कवियों की इन आख्यायिकाओं से कोई बात निश्चय नहीं कर सक्ते। प्रथम तो कालिदास ही ३ बतलाते हैं फिर जो कालिदास सरस्वती का अवतार कहा जाता है वही कालिदास उक्त श्लोक जो राघवेन्द्र में दण्डी का महत्वबर्द्धक कहा गया है, का हो तो क्या आश्चर्य है? आख्या-

यिकाएं बिलकुल झूठी भी नहीं हैं क्योंकि बिना फूल के खिले सुगंध नहीं आती, परन्तु इन से पुरातत्व का ज्ञान लाभ करना भ्रमात्मक नहीं तो संशयाविष्ट ज़रूर होगा। इस लिये उचित है कि इस अभिप्राय से जो आख्यायिकाएं लिखी जांय वे भली भांति प्रमाणित और प्रत्यक्ष कर ली जांय नहीं तो सिवाय मनोबिनोद के और कुछ लाभ न होगा। "राघवेन्द्र" के उपस्थित लेख से हमको विशेषतः मनोविनोद ही का उद्देश्य सिद्ध होता दीखता है इसको पढ़ कर हमको भी एक कथा स्मरण हो आई है जो महाकवि भवभूति और कवि मुकुट मणि कालिदास के विषय में है। पाठकों के मनोरंजनार्थ हम उसे नीचे लिखते हैं। यह नहीं कह सक्के कि ३ में यह कौन से कालिदास हैं:—

पाठक जानते हैं प्रतिद्वन्दी का भय सब के पीछे लगा है। एक समय भवभूति और कालिदास में इस बात का विवाद उपस्थित हुआ कि "उन दोनों में श्रेष्ठ कौन है?" वे एक दूसरे को अपने से हीन बतलाते थे। अन्त में खूब रगड़ झगड़ के पीछे यह स्थिर किया गया कि चलो अमुक स्थान के सरस्वती सदन में सरस्वती के द्वारा इसका निवटेरा करावें। इस बात पर दोनों सहमत हुए और तुरन्त वहां चले जहां जाना था। जब ग्राम से कुछ दूर झाड़ी में पहुंचे तो दिन ढल गया। आगे चलकर उन्हों ने उस सुनसान जंगल में किसी के रोने की आवाज़ सुनी। यह आवाज़ उसी ओर से आ रही थी जिस ओर वे जा रहे थे। जब उस के निकट पहुंचे तो देखते हैं कि उस जगह जहां से उनका रास्ता दो हिस्सों में बंटता था एक स्त्री मुख नीचे किये रो रही है। उसे दुखी देख दोनों अचरज में आये कि ऐसी सुन्दरी का यहां आना क्यों कर हुआ। दोनों वहां एकदम ठिठक गये। भवभूति से रहा न गया पूछा, "सुभ्रू तू यहां कैसे आई तू कौन है और क्यों अरण्य रोदन कर रही है?" स्त्री ने कुछ उत्तर न दिया। एक बार

दोनों को देख कर फिर मुंह नीचा कर लिया कालिदास ने फिर पूछा और साथ आग्रह के कहा कि "यदि तू अपने दुःख का हेतु न कहेगी तो हम लोग आगे न बढ़ेंगे"। स्त्री ने धीरे से कहा "भाइयो! तुमको इस पंचायत से क्या मतलब! वृथा मेरे साथ अपना समय क्यों खोते हो मार्ग पड़ा है जहां जाते हो जाओ" कवियों ने न माना और उत्तर के लिये हठ किया। तब स्त्री बोली "तुम्हारे इस हठ से मालूम होता है अवश्य कुछ लाभ होगा इसलिये कहती हूं सुनो मैं अमुक नगर की रहने वाली अमुक की पतोहू हूं। मेरी सास मुझको चंडी कहकर पुकारती है। कल सांझ को मैं सास के संग उद्यान में घूम रही थी सास ने "मल्लिका मुकुले चण्डि भाति गुंजन् मधुव्रतः"* यह श्लोकार्ध पढ़ा और मेरी ओर फिर कर कहा कि शेष की पूर्त्ति कर। सुनते ही मैं एकदम बोल उठी "प्रयाणे पंचवाणस्य शंखमापूरयन्निव"* यह सुन वह क्रोध में आगईं और मुझे अनेक दुर्वचन कहे किन्तु मैंने अपने कथित को नहीं बदला। इस से वह क्रोध से लाल हो मुझे खूब पीटा और घर से निकाल दिया! हे भाइयो! कहो इसमें मेरा क्या दोष था।

भवभूति-क्यों नहीं? तेरा इसमें महा दोष है। अच्छा हुआ, तू ने मारखाने का काम किया था।

स्त्री— कैसे

भवभूति-अरे तू कविता में प्रवीण होकर इतना भी विचार न कर सकी कि शंख किधर से बजाया जाता है। उपमान की ओर तू ने ज़रा भी

*मोंगरे की कली के ऊपर गूंजता हुआ भौरा इस तरह शोभायमान है मानो वह पंचबाण कन्दर्प के गमन, अवसर में शंख ध्वनि कर रहा हो।

लक्ष्य न किया। जब मल्लिका के ऊपर भौंरा बैठा हुआ गूंज रहा है है तब शंख का बजाया जाना मुंह की ओर से कहां हुआ? वह तो उलटा नीचे की ओर से हुआ जो सर्वथा असंगत है बेशक तेरी सास पण्डिता है और तू—

कालिदास-(भवभूति से) नहीं, नहीं इसकी सास बिलकुल मूर्खा है। इस बेचारी का इसमें कुछ दोष नहीं है यह बड़ी चतुर कवि प्रतिभावाली और निर्दोष है। कवि होना सहज है पर किसी कवि के भाव का जानना कठिन है।

भवभूति-अच्छा कहो, क्योंकर यह निर्दोष है।

कालिदस-सुनो,

मल्लिका मुकुले चण्डि भाति गुंजन्मधुव्रतः।
प्रयाणे पंचबाणस्य शंखमापूरयन्निव॥

इसका अर्थ हुआ कि मुकुलित मल्लिका के ऊपर मधु (पुष्प रस-मदिरा) से छके हुए भौरे की गुनगुनाहट ऐसी शोभा दे रही है मानो कामदेव का गमन समय जान वह शंख ध्वनि कर रहा है। जैसे शराबी उलटा सीधा नहीं जान सक्ता है जैसे पाया वैसा ही करने लगता है उसी प्रकार मधुमत्त भ्रमर को यह ज्ञान नहीं है कि उलटा कौन और सीधा कौन। उसको वही सीधा हो रहा है जिधर को तुम उलटा समझते हो।

यह सुन भवभूति चुप हो गया तब वह स्त्री हंस कर बोली भव-भूति! क्यों चुप होगये। कहौ, तुम से कालिदास श्रेष्ठ हैं या नहीं। पहिचाना मैं कौन हूं। भवभूति ने उसे पहिचान लिया कालिदास की श्रेष्ठता स्वीकार की और कालिदास सहित सरस्वती का अभिवादन किया। सरस्वती अन्तर्ध्यान होगई और दोनों सरस्वती की इस परीक्षाकी रीति को स्मरण कर२ आनन्द और पुलकित होते हुए अपने२ घर लौटे।

इस आख्यायिका से मनोरंजन के अतिरिक्त यह शिक्षा प्राप्त होती है कि काव्य वा कविता करना बहुत सुगम है परन्तु उसका समझना उस से भी कठिन है। इसलिये हे नव कवियो! काव्य प्रेमियो पहिले आप कवियों के भावों के समझने का यत्न करें अर्थात् जो २ कवि हो गये हैं वा हैं उनके सरस काव्यगत भावों का ज्ञान लाभ करें। यदि उनमें कुछ त्रुटि वा अभाव दीखे या कुछ विशेष नयापन आप प्रकाश कर सकें तभी रचना करने का साहस करें। तब आप का परिश्रम विफल न होगा।

अनन्तराम पांडे रायगढ़.

——

बधाई।

हमारे पढ़ने वाले एकबारगी चौक उठैंगे कि आज इस ने बधाई का चरखा कैसा ओटना शुरू कर दिया प्रदीप ठीक समय से प्रतिमास निकलने लगा क्या उसी की बधाई एडिटर को दी जाती है। अथवा यह बधाई पढ़ने वालों को है इस लिये कि इस्में जो बुढ़ापे की झांई थी सो सब दूर हो गई नये तर्ज़ के चटकीले रसीले लेख उन्हे पढ़ने को मिलने लगे। या इसकी बधाई होगी कि इस समय प्रयाग विश्व विद्यालय की परीक्षा का परिणाम गज़ट में प्रगट हुआ है प्रदीप के बहुत से लेखक वाचक और सहायक इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुये हैं उन्हीं को यह बधाई दी जाती है। अथवा किसी के जन्मोत्सव की बधाई दी जाती है। एडिटर तो बुढ़ाय गये अवश्यमेव प्रदीप के किसी हितेच्छुक के पुत्र हुआ होगा। ताड़ बाज़ी के फिरके जमाने से तो आप कहीं से न चूके किन्तु इन सब बातों में एक भी इस बधाई का कारण नहीं है। सच तो यों है कि यह हमारी बधाई कान को कड़ुई होने से कदाचित् न भावै आप नहीं मानते तो सुनिये। किन्तु कड़ुई समझ थूक न दीजियेगा दवा जो कड़ुई होती है उस्का फाइदा एक निराले ढंग का होता है और हमारे तो इस

बधाई देने का क्रम ही कुछ और है जिसे यह बधाई दी जाती है वे ही शायद इसे न समझें। पढ़ने वाले कहेंगे कौन ऐसा मूर्खों की श्रेणी में नाम लिखाये हुये बुद्धि का भण्डार है जो उसे बधाई दी जाय और वह न समझे कि हमे क्यों बधाई दी जाती है। सिवा इसके आज इसे क्या सूझा है जो बिना सिर पैर की बात के लेख को शैतान की आंत सा बढ़ाता चला जा रहा है या इसके लेखक को गोस्वामी किशोरी लाल का अनुयायी बनने का हौसिला तो नहीं चर्राया कि जो इसके लेख के प्रयोजन को न समझ सके वह झख मारने को पत्र पढ़ने का रसिया बनता है। अस्तु तो अब हम उनका नाम बतलाई देते हैं ये महाशय लार्ड कार्ज़न महोदय हैं जिन्हों ने बंग विभाग का प्रस्ताव कर हमारे नेत्र खोल दिये और हमे सूझने लगा कि हम कहां तक बहके हुये थे। ऐसे पुरुष को जितनी बधाई दी जाय सब उचित है घुणाक्षर न्याय के क्रम पर जिन से एक ऐसा काम बन पड़ा है कि जिस्से देश का देश उत्तेजित हो उठा है जैसा कोई गहरी नीद से सोता हुआ एकबारगी चौक पड़े। प्रत्येक बड़े २ नगरों में मीटिंग और सभायें स्थापित हो रही हैं तरह २ की बातें लोग सोच रहे हैं कि किस तरह देश से विलायत की चीज़ें उठ जांय और उनकी जगह स्वदेशीय वस्तु का प्रचार हो। बम्बई और पूना के मरहठे प्रसिद्ध २ मिल के मेनेजर, और स्वामी बंगालियों के साथ सहानुभूति प्रगट करते उन्हे भरोसा दे रहे हैं कि तुम किसी तरह का अंदेशा मत करो हम तुम्हे हर तरह के कपड़े प्रस्तुत कर दे सक्ते हैं। ईश्वर इनका सहायक हो विलाइती चीज़ों के त्यागने का इनका दृढ़ संकल्प बढ़ता जाय और पोढ़ा पड़ता जाय देश का धन जो बाहर जाने से रुक गया तो सब ओर सोने के फूल फूलने लगेंगे कंगलों का नंबर घट जायगा काम न रहने से जो लोग दर २ घूमते फिरते हैं सब अपने हाथ की मेहनत से दो का पेट भर अपना पेट पोखैंगे। इतना २ उपकार जिसके द्वारा होने की संभावना है उसे क्यों बधाई न दीजाय R. A.

संपादक की कपोल कल्पना।

शुभागमन।

हमारे यहां शिष्ट मण्डली की बोल चाल में किसी भव्य महा महिम के आगमन में उनके आगमन को शुभ का विशेषण दिया जाता है। "सर्वं हि महतां महत्" बड़ों की सभी बात बड़ी होनी चाहिये इस कहावत के अनुसार ऐसा करना उचित भी प्रतीत होता है किन्तु ऐसे कराल समय में जब आरत दशा में पड़ा भारत इस तरह क्षतिग्रस्त हो रहा है कि प्लेग ने तो बीसों वर्ष तक के लिये डेरा जमाये रखने का पूरा इन्तिज़ाम करी रक्खा था बीच में भूचाल भी अपनी निराली चाल देखलाने से न चूका। अब इस समय किसी प्रान्त में अतिवृष्टि कहीं सर्वथा अनावृष्टि से अकाल गाल बजाता हुआ सब ओर देश में व्याप रहा है ऐसे समय हमारे सामयिक संम्राट् के हृदयानन्द बर्द्धन युव राज के यहां पधारने को शुभागमन कहें?

——

"प्रभुत्वं लोकाभ्युदयाय तादृशाम्"।

भले लोगों की भलाई का प्रादुर्भाव प्रथम ही से होने लगता है। लार्ड मिंटो के आगमन का शुभ सूचक चिन्ह पहले ही से प्रगट होने लगा। दो महीने उपरांत पंजाब प्रान्त और दिल्ली आगरा की ओर थोड़ी वृष्टि हो जाने से अब महा अकाल का भय कुछ मिटा सा मालूम होता है! प्रजा में देशानुराग बढ़ता जाता है। इससे प्रगट है कि कदाचित् शान्तिप्रिय मिंटो हम लोगों की Goodwill प्रीति भाजनता सहज में प्राप्त कर लें तो क्या अचरज और लार्डकर्ज़न के शासन का अनेक दैवी तथा मानुषी क्लेश भूल इस सिद्धान्त को लोग पुष्ट मानेंगे कि राजा की भली या बुरी नीयत का फल अवश्य प्रजा पर आता है।

प्राप्त ग्रन्थ ।

इतिहास ।

यह मासिक पुस्तक काशी की इतिहास समिति द्वारा प्रकाशित है गत जुलाई की एक संख्या हमारे पास आई है जिस्में रमेशचन्द्र दत्त कृत भारत के इतिहास का अनुवाद बड़ी योग्यता के साथ किया गया है। जुलाई की इस संख्या में प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास है। हिन्दी साहित्य में इतिहास के संबंध में जो अन्धकार सा छाया हुआ था सो इस पुस्तक के द्वार दूर हो जायगा। इतिहास के ऐसे २ ग्रन्थ प्रकाशित होने से निस्सन्देह बड़ा लाभ है। दत्त के इतिहास के निन्दकों को हम क्या कहैं जो व्यर्थ को इस ग्रन्थ को प्रकाशित होने से रोकते थे हमने भी जब तक इस के गुण को नहीं जाना था भ्रम में पड़े थे। जब इस्के द्वारा हमारी पुरानी बातें याथातथ्य निर्णीत मालूम हो रही हैं तब इस्की निन्दा करना व्यर्थ है। यह पुस्तक सब लोगों के संग्रह योग्य है वार्षिक मूल्य २) है। मिलने का पता—माधव प्रसाद बुक एजेंट बनारस सिटी।

—

चीन में १३ मास ।

सन् १९०१ के चीन के महा संग्राम में ठाकुर गदाधर सिंह वर्मा यहां से सर्कारी सेना में भरती हो वहां जाय जो कुछ उन्हों ने देखा उसे सविस्तर वहां की चाल, ढाल; राह, रसम. मन्दिर, इमारत, आदि का हाल ३२५ पृष्ठ में लिखा है। पं—महेन्दु लाल गर्ग ने भी वहां का सब हाल अपने चीन दर्पण में विस्तार पूर्वक कहा है। अन्तर केवल यही है कि गर्ग जी ने सर्सरी तौर से लिखा है ठाकुर साहब उसमें नोन मिर्च लगा उसे चर्परा करते चले हैं। भाष्यकार की भांति सूत्र सा थोड़ा हाल लिख बात २ में भारत की वर्तमान दशा का चीन से मिलान करते हुए अपने

Remark टिप्पणी देते गये हैं। जो पढ़ने में विशेष रोचक हैं बात २ में भारतवासियों पर भें२ कर चटकाया है। लेख में आर्य्य समाजीपन बहुत ही अधिक झलक रहा है किन्तु लेखक महाशय औरों की भांत वैसे कट्टर आर्य्य नहीं हैं कि केवल गाली ही देना जानते हों बरन इनके लेख में देश का प्रेम प्रगट हो रहा है। पुस्तक अवश्य पढ़ने लायक है और लेख प्रणाली भी मन रमाने वाली है मूल्य १॥) है । पता—ठाकुर गदाधर सिंह दिलकुशा प्रेस लखनऊ।

——

शिक्षामणि।

छोटी कन्याओं के पढ़ने योग्य जिसमें उपदेशात्मक आख्यायिकाएं दी गई हैं। जालन्धर के वकील लाला नरायणदास रचित मूल्य =)॥ है-

नारद

इस नाम का मासिक पत्र छपरा से निकलता है इसके संपादक और लेखकों की लेख चातुरी अवश्यमेव चटकीली है। इसमें से समाचारावली का कालम् निकाल दिया जाय और कुछ पृष्ठ और बढ़ा दिये जांय तो यह पत्र अवश्य अच्छा रसिक विनोद कहा जा सक्ता है। दूसरे यह कि इसका नाम नारद भला नहीं मालूम होता है कदाचित् इसके कर्ता धर्ता नितान्त अल्प वयस्क हैं नहीं तो ऐसा नाम न तजवीज़ते वार्षिक मूल्य १) है।

——

दीवान गौरी शंकर उदया शंकर

ये भागलपुर राज्य के दीवान हो गये हैं इनके पवित्र चरित्र तथा कार्य कौशल की आलोचना प्रयाग के अभिनव जाति राघवेन्द्र में विस्तार के साथ की गई है। ऐसों का चरित्र पढ़ जो अपने को उन्हीं के चरित्र का नमूना बनाया चाहें वे संपादक को ।=) भेज इसे संगाय पढ़ें।

गोस्वामी जी के उपन्यास।

गोस्वामी श्री किशोरी लाल जी ने हमें ३ उपन्यास और भेजे हैं। लवङ्गलता वा आदर्श वाला, हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी, रज़िया वेगम वा रङ्ग महल में हालाहल। २ का दाम अलग अलग ॥) तीसरा उपन्यास दो भाग में है दोनों का दाम १) है गोस्वामी जी की लेख प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ लिखना केवल पिष्ट पेषण है। ऐतिहासिक उपन्यास विशेष लाभदायक हैं "एक पन्थ दो काज"—"एकाक्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा"-उपन्यास के पढ़ने से मनो विनोद साथही साथ ऐतिहासिक घटनाओं का परिज्ञान इसलिये गोस्वामी जी को ऐसे उपन्यास लिखने का विशेष धन्यबाद है।

पुराने में नया पैवन्द।

बहुधा देखा जाता है पुराना कपड़ा फट जाने पर लोग नये का पेबन्द उसमें लगाते हैं परिणाम यह होता है कि उस पेवन्द से पुराने को कोई मज़बूती नहीं पहुंचती नया भी उसके साथ पुराने में शामिल कर लिया जाता है। यही हाल इन दिनों के हमारे बहुत से संशोधकों का है वे चाहते हैं कि हम उन पुरानो को अपने नये ढंग पर झुका लावें किन्तु नतीजा यही होता है कि नयों का नयापन फीका पड़ जाता है पुराने लोग अपने बाबा आदम के बख्त के खुर्राट पने से बाल बराबर भी इधर उधर नहीं टसकते। सच तो यों है कि पुराना या नया इन दोनों में रात और दिन अंधेरे और उजाले का सा अन्तर है। नया पुराना हो जाता है पर पुराने को नया होते किसी ने न देखा और न सुना होगा इसलिये दोनों मे मेल होने की सुगम उपाय हमारे मन में यही आती है कि हम काम से पुराने रहें पर ख्याल हमारे नये होने चाहिये। ऐसा होने से पुराने और नयों का अटल बिरोध भी मिट सक्ता है और हम आगे बढ़ने के लिये

तैयार हो जा सक्ते हैं। समाज को सुधारने का यह बहुत उमदा लटका है हमारे संशोधकों के कहने का असर समाज पर तभी पड़ सक्ता है जब इस पालिसी को काम में लावें। जो संशोधक आचरण की कसौटी में कसे जाने पर खरा निकलता है उसके कहने का जैसा असर सर्व साधारण पर पड़ता है वैसा उसका नहीं जिसने आचरण की पवित्रता को मन से ढीला कर सर्वभक्षीहुताशः अपने को बना लिया है पवित्र आचरण से कदाचित् पुराने में नये का पेवन्द भी कारगर हो शोभा पावेगा।

भट्ट नारायण।

बेणी संहार नामक प्रसिद्ध नाटक के रचयिता भट्ट नारायण उन पांच ब्राह्मणों में से हैं जिन्हें बंगाल के राजा आदि शूर ने मध्य देश से बुला के बंगाल में बसाया। डाकूर राजेन्द्र लाल मित्र के कथनानुसार आदिशूर ही का नामन्तर बीरसेन है और उक्त महाशय तथा आर-सी-दत्त के भी निर्देशानुसार बंगाल में राजा बीरसेन का समय सन् ९८६ ई० से १०६ ई० तक अनुमित होता है। भट्ट नारायण जी ने आदिशूर को अपना परिचय नीचे लिखे श्लोक द्वारा दिया था।

बेणीसंहारनामा परमरसयुतो ग्रन्थएकः प्रसिद्धो भोराजन्मत्कृतोऽसौ रसिकगुणवता यत्नतो गृह्यते सः। नाम्नाहं भट्टनारायण इति विदितश्चारूशाण्डिल्यगोत्रो वेदे शास्त्रे पुराणे धनुषि च निपुणः स्वस्ति ते स्यात्किमन्यत्।

जिस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि बंगाल में आने के पहिले भट्ट नारायण बेणी संहार बना चुके थे और वह ग्रन्थ प्रसिद्ध भी हो चुका

था। निदान बंगाल के राजा आदिशूर के समसामयिक होने से नारायण का समय ख्रीष्टीय दशवीं शताब्दी में निश्चित होता है। इनके रचित बेणी संहार के श्लोक बहुधा काव्य प्रकाश में उठाये गये हैं। भट्ट नारायण रचित एक ग्रन्थ का नाम प्रयोग रत्न है। काव्य प्रकाश में जो श्लोक उदाहरण में दिये हैं उनमें बेणी संहार और रत्नावली के श्लोक बहुत अधिक हैं।

बंगाल निवासी श्री युक्त बाबू प्रसन्न कुमार ठाकुर अपने को भट्ट नारायण का वंशज बतलाते हैं और उन ने जो बेणी संहार नाटक छपवाया है उसके प्रारम्भ में बंशावली भी लिख दी है जिस से ज्ञात होता है कि उक्त बाबू साहेब भट्ट नारायण के वंश में ३२ वीं पीढ़ी में पड़ते हैं। भट्ट नारायण के पिता का नाम भट्ट महेश्वर था क्योंकि 'भट्टमहेश्वर सुतः भट्ट नारायणः सुधीः' ऐसा श्लोकार्द्ध सुनने में आता है पर ये भट्ट महेश्वर साहसाङ्कचरित के रचयिता हैं वा और कोई हैं इसका पता लगाना चाहिये।

बूल्हर साहिब ने कश्मीर के शैव दार्शनिक लक्ष्मण गुप्त को उत्पल और भट्ट नारायण का शिष्य बतलाया है यह लक्ष्मण गुप्त सन् ९५० ई० में विद्यमान् थे। क्या अचरज है कि ये भट्ट नारायण बेंणी संहार ही के रचयिता रहे हों जिल्द १९ के ५ अङ्क में भट्ट नारायण का सविस्तर हाल लिख चुके हैं॥

भट्ट लोल्लट।

काव्य प्रकाश के रस निरूपण प्रकरण में इनका मीमांसा की रीति का सूत्र व्याख्यान लिखा गया है। राजानक सय्यक ने अलङ्कार सर्वस्व में इनके मत को उठाया है अतएव ये मम्मट से प्राचीन व्यक्ति सिद्ध होते हैं इनका रचित कोई ग्रन्थ वा उसका कुछ उल्लेख कहीं देखने में नहीं आया। ये महाशय नाम से कश्मीर निवासी जान पड़ते हैं। ख्रीष्टीय ११वीं शताब्दी से पिछले व्यक्ति ये नहीं हो सकते पर उसके पूर्व कब तक उनके होने की संभावना पाई जाती है इसका कुछ निर्णय नही होता जान पड़ता।

REGISTER No. A—308.

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहिं टरै ॥
सूझै विवेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २७
सं० ११ } प्रयाग { नवम्बर
सन् १९०५ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभार्थे पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) ——०*०—— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

——:००:——

जि० २७ संं० ११ | प्रयाग | नवम्बर सन् १९०५ ई०

विशाल वाटिका ।

पहले इस्के कि इस विशाल वाटिका का हाल हम अपने पढ़ने वालों को कह सुनावें उचित जान पड़ता है कि जिस बाग का सैलानी हम उन्हें बनाते हैं उस बाग के बागवान के साथ उन का परिचय करा दें-यह बागवान यद्यपि बूढ़ा हो गया है और अब इस्की नस २ ढीली पड़ गई है पर बागबानी के हुनर में सब भांति कुशल अपने नये २ साथियों से कहीं पर किसी अंश में कम नहीं है-इस बाग के माली में यह एक अनोखा गुण पाया गया कि जो इस बाग की

सर्वाङ्ग सुन्दरता पर मोहित हो यहां आया उसे इसने इतना लुभाया कि वह अपनी निज की जन्म भूमि को भूल यहीं का हो गया-इस तरह के पाहुने एक दो नहीं बरन न जानिये कितने आये और आते जाते हैं-कितने भूत के आकार से लम्बी २ डाढ़ी वाले यहां के फूल फल पर प्रलोभित हो आये जो कुछ हाथ लगा नोच खसोट चंपत हुये एक इन लुटेरों में से पांव का लंगड़ा भी था-कोई २ आये तो इसी मनसूबे से कि जो कुछ पावैं ले लेवाय चल खड़े हों पर इस बाग के माली के साथ उनकी ऐसी खिल्त मिल्त हो गई कि वे भी अपनी जन्म भूमि को भूल यहीं के हो गये-कोई अदला बदला करने की इच्छा से आये उन की उजाड़ ऊसर धरती में जो कुछ उन्हें मिला उसे यहीं छोड़ यहां के सुस्वादु रसीले और सुगन्धित फल फूल ले गये-कुछ दिन के उपरान्त उनको भी जंगल उजाड़ और ऊसर धरती में रहना पसन्द न आया इस चतुर माली के कोमल बर्ताव से इस मनोहर बाटिका पर मोहित हो उन्हें भी यहीं अपना घर बनाना पसन्द आया-इन आगन्तुकों में अमित असीम महोर्मिमाली वरुणालय को नांघते डांकते एक ऐसे आये जो अपनी काल व्याल सी भीषण विकराल दृष्टि के पात से उस बूढ़े बागवान को संत्रासित करते नस २ उसकी ढीली कर डाला-भोला भाला बागवान इसी ख्याल में था कि यह भी हमारी इस मनोहर बाटिका पर रीझ यहां बस हमारा एक अंग बन जायगा किन्तु यह नया पाहुना ऐसा चालाक निकला कि इसने उस समस्त बाटिका को तिल २ नाप जोख बात की बात में अपना अधिकार उस पर जमा लिया और सरल चित्त बाग के माली को सब ओर से ऐसा जकड़ लिया कि अब यह इस नये पाहुन के पेंच में पड़ा हुआ सब भांति बेबश हो गया और जो कुछ समझ रक्खा था कि थोड़े दिन के ज़ोर ज़ुल्म के बाद या तो यह चला जायगा या बस जायगा तो औरों की तरह यह भी हमारा ही होकर रहेगा सो सब बात उलटी पड़ी-

यह पाहुना चालाकी में एकता निकला पहले वालों का सब दास्तान जान चुका था और बागवान की प्रलोभन शक्ति को भी खूब टटोल लिया था इसने अपनी जन्म भूमि का सम्बन्ध न छोड़ा बरन जहां जो कुछ हीर पदार्थ इसने पाया अपनी मातृ भूमि में भेजना आरंभ कर दिया और सर्वथा बागवान और बाग को निःसत्व कर डाला ॥

अस्तु यद्यपि इस बाटिका की सर्वाङ्ग सुन्दरता हर ली गई और पहले की सी पवित्रता उज्वलता अब कलुषित और दगीली कर दी गई फिर भी ऐसी २ क्यारियां इस्में मौजूद हैं कि जो जिस तरह के फल फूल का रसिक है वह यहां पहुंच अपनी रुचि के अनुकूल उस तरह का पाय मनमाना उसे छक कर तृप्त और अघाया हुआ अपने को मालूम कर सक्ता है-पहले हम अपने पढ़ने वालों को उस क्यारी के पास ले जाते हैं जो इस बाटिका के जीर्णारण्य में सब ओर लंबी २ घास और नुकीले सुये की भांति चुभने वाले कांटों से आवृत है-जहां पहुंच बाग के सैलानी को इस श्लोक के भावार्थ का भरपूर अनुभव होता है-

"पत्र पुष्प फल लक्ष्मीः कदाप्यदृष्टं वृतं च
खलु शूकैः। उपसर्पेम भवन्तं वद बर्बुर कस्य लोभेन" ॥

इस क्यारी का सब गाटे का गाटा कंटकावृत होने से निकम्मा हो रहा है जहां कहीं कोई पेड़ भी हैं तो बिषफल उस्में फलते हैं। जिसके खाने वालों के रग २ में उन फलों का असर बैर फूट परस्पर की स्पर्द्धा ईर्षा द्रोह मद मात्सर्य के सिवाय और कुछ वहां हई नहीं। इन फूलों की तीखी महक और इसके फल का कडुआ रस दूर २ तक इस संपूर्ण बाटिका में ऐसा व्याप गया है कि समस्त गुण रंजित होने पर भी यहां के पेड़ केवल फूट के कारण नहीं फबकते। इस गाटे की धरती

में एक अनोखी बात देखने में आई–इसाईयों की धर्मपुस्तक में लिखा है "खुदा ने आदम को Tree of knowledge. ज्ञान के पेड़ का फल खाने को मना किया था" पर इसके विरूद्ध यहां अज्ञान का वृक्ष न जानिये कहां से उग आया है कि जिसने अज्ञता के फल को चक्खा उसमें विज्ञता संपादन की यावत्‌चेष्टा और प्रयत्न सब व्यर्थ होता है– प्रिय पाठक इस बाग के सैलानी बनते हो तो सावधान रहो दत्त चित्त हो हमारी बात पर ध्यान दो ऐसी न जानिये कितनी क्यारियां इसमें हैं उनकी ओर न झुक पड़ना। ऐसा न हो कि उन बिषैले फलों की हवा तुम्हें लग जाय और तुम इन फलों के खाने वालों के साथी बन जाओ। लो आगे चलो देखो ये कैसी मनोहर क्यारियां हैं। इसके अन-गिनत पेड़ फूल और फलों से लदे लहलहाते हुये कैसी शोभा दे रहे हैं। इसके फूल फल उन्हीं को सुलभ हैं जो परिश्रमी दृढ़ संकल्प और उद्यमी हैं जिनमें इतना साहस है कि काम पड़ने पर असीम महा-सागर और दुर्गम खाड़ियों को "गोष्पद" गऊ के खुर के समान पार कर डालते हैं "किं दूरं व्यवसायिनाम्" इनका कला कौशल हाथ की कारीगरी विज्ञान चातुरी शिल्प और वाणिज्य दूर २ के देश तक विख्यात रहा इसी से बाग के माली का अनेक बार की लूट पाट पर भी ज़रा मान न मटका सदा सुख चैन की दशा में रहा आया। किन्तु थोड़े दिनों से अकाल जलदोदय की भांति एक ऐसी घटा उमड़ आई कि जो शिल्प और वाणिज्य दूर देश तक फैला था और जिसकी कदर की थाह न थी खुरखुरा भद्दा और मोटा वरन घिन के लायक हो गया। हम लार्ड कर्ज़न को धन्यवाद देते हैं जो इस क्यारी की भूमि में एक ऐसी खाद छोड़ चले कि विदेश से आई हुई वह घटा छिन्न भिन्न हो गई। परदा जो आंख के सामने था हट गया एक बारगी सब के सब चौंक पड़े जैसा कोई सोते से जाग उठे। सोचने लगे हाय हम सब लोग किस मोह जाल में पड़े थे। अब नये सिरे से इन क्यारियों के पेड़ों को

सींचने और साजने में बड़ी सावधानी से दत्तचित्त हो रहे हैं। आशा होती है अब यहां के फूल फल पहले से भी अधिक सर्वग्राह्य होंगे बागवान जो दीन दशा में आ गया है और इसके लड़के वाले जो काम न रहने से भिखारी हो गये बड़े २ धनियों के समकक्ष हो जांय तो क्या अचरज– चलिये अब आप को दूसरी क्यारी की शैर करावें जहां की पुण्य भूमि और पवित्र स्थलियों में कल्पवृक्ष से पादप उपज कर अपने जगद्विदित घ्राण तर्पण सुरभित कुसुम की कुसुमावलियों से संसार की कौन ऐसी दार्शनिक मण्डली, विविध कला कोविद विद्वानों का समूह, कवि समाज, तथा वैज्ञानिक बच रहे जहां इन फूलों की सुगन्धि नहीं पहुंची। पेशगोई और नबूअत का झंडा गाड़े हुये धर्म के प्रचारक जो ईश्वर का एकलौता पुत्र तथा जगत् का त्राण कर्ता कह अपने को प्रसिद्ध किये थे वे भी इन क्यारी के वृक्षों का फल चख कृत कृत्य हो गये और यहां के अमोघ ज्ञान का दो चार विन्दु पाय अघाय उठे। किन्तु हा कुचाली काल चाण्डाल का सत्यानाश हो अकस्मात् एक ऐसा हिमपात हुआ कि इस बाग के सब पेड़ ठिठर से गये और वे फल फूल जो ऐहिक तथा आमुष्मिक ज्ञान यह लोक और परलोक के उपकार साधन का स्रोत या केन्द्र है हिम के करका पात से दबकर सब छिप गया। विदेशी सभ्यता और विदेशी शिक्षा की तो यही चेष्टा थी कि इस पवित्र ज्ञान के खज़ाने को सर्वथा निर्मूल और नष्ट भ्रष्ट कर डालें किन्तु जो सत्य है उसका त्रिकाल में नाश नहीं होता Truth is always truth दूसरे पूर्वज महर्षियों के तपोबल का प्रभाव और सत्य पर उनकी पूरी दृढ़ता कैसे व्यर्थ हो सकती है वेही प्रद्योतित हृदय वाले जो पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा से बहक महात्मा ऋषियों के अनुभव और ज्ञान को "नान सेन्स" कहने लगे थे अब उसी को सत्य के पाने का द्वार मान रहे हैं– इस क्यारी की शोभा के निरीक्षण में हम कहां तक आप को बिलमाये रहैं इसके एक २ पेड़ ऐसे हैं जिससे पूरा परिचय प्राप्त करने के लिये आप

को महीनों और बर्षों चाहियें। चलिये आगें बढ़िये देखो सामने यह कवि बाटिका की क्यारी लहलहाती हुई अनिर्वचनीय आनन्द सन्दोह मन में उपजा रही है। इसका यह एक अद्भुत प्रभाव है कि यहां पहुंच तुम्हारे मन मधुप को कहीं और ठौर विचरने की इच्छाही न होगी न उसे इतना अवकाश मिलैगा-"नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदाली" चलते २ आप थक गये होंगे इससे थोड़ा ठहर इन्हीं द्रुम कुंजों में विश्राम लै तब आगे चलिये। तथास्तु (सैलानी बैठ गया थोड़ा सुस्ता कर) व्यर्थ ही लोग अमृत को सराहते हैं स्वर्ग में देवगण निरन्तर अमृत का एक रस पान करते २ ऊब गये होंगे इस बाटिका के श्रृंगार वीर करुणा आदि नौ रस का पान करते हुये धरती पर मनुष्यों को देख अपने को धिक्कारते होंगे। कालिदास भवभूति सरीखे कवियों की सूक्ति का रस पान जिन्हें स्वप्न में भी काहे को मिलता होगा॥

"सत्कविरसनासूर्पी निस्तुषतरशब्दशालिपाकेन।
तृप्तो दयिताधरमपि नाद्रियते का सुधादासी"॥

कवि ने अमृत से दयिताधर को उत्तम कहा है सच है-अमृत निगोड़े को कहां इतना साहस जो कविता के दिव्य रस की तुलना कर सके-कवि ने पहले सुधा दासी से दयिताधर को आदर दिया फिर कविता के रस का स्मरण कर उसे भी भुला दिया। केवल कविता ही पर क्या यह बाटिका तो रस की खान हो रही है जिस विषय का जो रसिक है उसे अपने मन के माफिक विनोद यहां मिलना अति सुलभ है। बाटिका की किस २ बात की सराहना की जाय यहां की धरती की उर्वरा शक्ति; जल वायु की मृदुता; समय २ ऋतु का परिवर्तन; पृथ्वी के जिस भूभाग के जो हों वे सब अपने २ घर का सुख यहां पा सक्ते हैं—इसी से जो यहां आये उन्होंने फिर अपनी जन्मभूमि में लौट जाने का मन न किया और जो

आये सब अपना स्वत्व ही इस पर स्थापित करते गये। अपनी पहिले की ज़र्रारी वर्रारी को तिलांजुली दे उन्हीं के सम कक्ष बन गये जिनका मांस और रुधिर अनादि काल से इस बाटिका की भूमि से संलग्न है कदाचित् मेदिनी पृथ्वी का नाम इसी से पड़ गया कि पृथ्वी उन्हीं के मेदा चर्बी की बनी है अस्तु इस बाटिका की वर्तमान दृश्य देख वह निश्चय हो गया कि "प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः"— विधाता समग्र गुण एकही में रखने का बड़ा बिरोधी है जैसी यह सुललित बाटिका मन को रमाने वाली थी भूमि समस्त गुण संपन्न और फूल फल भी सुगन्धि और मिठास में अद्वितीय थे वैसा ही इन फूलों में आत्मगौरव क्यों न आया—इन को अपने रूप का परिचय बिल्कुल न रहा न जानिये कब से ये अपने को भूले हुये हैं— हमें खेद है कि अपने पास ही जपान की बाटिका का नवाभ्युत्थान देख इन्हें अपने पूर्व रूप संपादन का हौसिला क्यों नहीं होता हे अनाथनाथ तू जो इन्हें सनाथ किया चाहै तो निमेष मात्र में सब कुछ कर सकता है सब तेरे आधीन हैं॥

"विषस्यविषमौषधम्"।

"विष को विषही मारता है"।

यह कहावत न जाने कब से प्रचलित है परन्तु इसका गूढ़ अर्थ समझने का अवसर लोगों को कम मिलता होगा और जो मिलता भी होगा तो डाक्टरों या वैद्यों को जिनके लिये यह एक साधारण बात है क्योंकि बहुत से रोगियों को ऐसे रोग होते हैं जिनमें विष देने की आवश्यकता होती होगी—अस्तु॥

साधारण लोग विष उसी वस्तु को कह सकते हैं जिसके प्रयोग से अर्थात् खाने पीने सूंघने स्पर्श करने इत्यादि २ से प्राणी मात्र को अत्यन्त कष्ट पंहुचै और जान जाने की शंका हो परन्तु ऐसी वस्तुओं

के अतिरिक्त भी भारत में आज कल ऐसे ऐसे महाविष फैले हैं जिनके सामने कोई विष नहीं ठहर सकते। मेरे इस महाविष के शब्द को सुनकर पाठकों को कदाचित् उस विष का ध्यान आया हो जो समुद्र-मथन के समय १४ रत्नों के साथ निकला था। हमारे भोले भाले भोला-नाथ जी ने सब सुर असुरों को असमर्थ पाय बेखटके अपने कंठ में रख लिया जिस कारण उनका कंठ बिलकुल नीला हो गया और आज तक नील कंठ उनका नाम इस भारत में पूजनीय समझा जाता है। परन्तु मेरा अभिप्राय उस महाविष पर ध्यान दिलाकर प्राचीन समय के ऋषियों को भला बुरा कहने का नहीं है क्योंकि एक तो पुराने ज़माने की बातों को न तो कोई सुननाही चाहता है और न उन पर बिश्वास करना चाहता है। यह सब या तो पोपलीला समझी जाती है या ब्राह्मणों के "Inperfect" और "Uncultured imagination' की गढंत-जिसको हमारे "Enlightened" और "So called perfectly civilized' महाशय ठट्ठे मारकर उड़ा देते हैं कारण यह कि इन पर किसी प्रधान लन्डनीय महाशय की Opinion. नहीं मिलती है। परन्तु मैं आज आप को उन विषों का ध्यान दिलाना चाहता हूं जिनको इकट्ठा घोल कर पीजाने और हज़म कर जाने के कारण सम्पूर्ण भारतवासी आज दिन इस भूमि पर "काला आदमी" कहे जाते हैं और नीच से नीच अन्य देश के लोग उनसे घृणा करते हैं। भारत सन्तान में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र यह चार ही वर्ण गिने जाते हैं। इनमें से किस वर्ण में आज कल कौन कौन से महा विषों ने प्रवेश किया है यह मैं आप को संक्षेप में कहे देता हूं॥

ब्राह्मण में अविद्या, लोभ, अहंकार, आलस्य, दीर्घसूत्रता, अधर्म काम, क्रोध, बाल्यबिवाह कराने में सम्मति इत्यादि इन सब को अपनी मूर्खता की सिलौटी पर पीस कर वेद न पढ़ने के कारण छेदही बुद्धि

की छन्नी में छानकर बिलकुल गड़गाप पड़े हैं॥

क्षत्री डरपोकपन, परस्त्रीगमन, जीवहिंसा, मद्यपान, निर्लज्जता, खुद-ग़र्ज़ी, निर्बलता इत्यादि बिषों के प्याले पिये एक तर्फ मतवाले मोरी में मुंह डाले पड़े हैं। वैश्य दुराचार, दुर्वचन, व्यभिचार, बहुमत, हां में हां मिलाने में नैपुण्य इत्यादि का बिषैला रस पीकर दूसरी ओर अचेत पड़े हैं॥

शूद्र-वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण बनने की युक्ति, चोरी, दग़ाबाज़ी फरेब इत्यादि के घोल पीये सन्नाटे में पड़े दिखाई देते हैं॥

महाशय अब तो आप को उन भारतीय महाविषों के नाम मालूम हो गये होंगे जिन के नशे में भारतवासी सब सुध बुध भुलाये आज दिन अचेत दिखाई देते हैं। बड़े खेद की बात है कि ऐसे २ यंत्र मंत्र तंत्र जानने वाले ओझाओं के यहां होते भी कोई ऐसा समर्थी नहीं कि इन विषों को उतार अपनी मातृभूमि का उद्धार करे? परन्तु याद रहे इस पृथ्वी पर किसी वस्तु की कमी नहीं है भारतवासियों में यदि ऐसा ओझा कोई नहीं है तो क्या? सत्य है "गुण न हिराने गुण ग्राहक हिराने हैं" इसी भारतभूमि पर आज ६॥ वर्ष से एक ऐसा ओझा मौजूद है जिसकी बड़ाई करना मानो सूर्य्य को दीपक दिखाना है। झाड़ फूंक कर विष उतारना और चढ़ाना इन महाशय के बांयें हांथ का कर्तव्य है। इनका ऐसा पक्का जादू है कि एक एक मंत्र से ३० करोड़ आदमियों तक का ज़हर एक फूंक में उतार सकते हैं। उनकी करामातों के नमूने इसी भारत में कई मौजूद हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए कि उसने एक पहाड़ पर चढ़कर थोड़ा ही भारतवासियों को झाड़ा था कि सैकड़ों वर्ष के चढ़े विष का आधा नशा उतर गया और हज़ारों आदमी मुंह उठा-कर झूमने और झुलझुलाने लगे। बंगाले के जादू की बड़ी प्रशंसा सुनी थी उसी की परीक्षा करने के लिये उसने एक ही बार "तू काली कलकत्ते वाली मेरा बचन न जाये खाली-तेरा घर कर दूं दो टूक सब

भारत में फैले फूट-ला हैजा, ला प्लेग, ला अकाल छोड़ सब जोगिनी को लै खप्पर छू सटाक...छू फटाक...स्वाहा" इस मंत्र को ५०० कोस से पढ़कर हाथ से कुछ उर्द ऐसे फेंके कि एक दम बंगाले के दो टूक हो गये। और बंगाले का सब जादू एक ओर धरा रहा। बड़े २ जादूगर नंगे पांव व नंगे सिर होकर कितनी ही कोशिश करें पर उसके जादू को उलटना असंभव मालूम पड़ता है आगे ईश्वरी लीला अनूठी है॥ कूल॥

वन्दे मातरम्।

हमारे वङ्गदेशी भाइयों में इन दिनों बंकिम् बाबू की इस विशिष्ट कविता की बड़ी धूम है—उसे उद्धृत करना सामयिक समझ पड़ता है—यह कविता निरी संस्कृत है जहां वङ्ग भाषा की झलक आई है उसे हमने हिन्दी में लाने का यत्न किया है॥

सुजलाम्-सुफलाम्-मलयजशीतलाम्-शश्यश्यामलाम्-मातरम्-
शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकितयामिनीम् फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्।
सुहासिनीम्-सुमधुरभाषिणीम् सुखदाम्-वरदाम्-मातरम्॥
त्रिंशतकोटिकण्ठसुनिकलकलनिनादरवम्-
धृत्वाकरवालकरेकरोषिपरित्राणजवम्।
वाहुबलशालिनीम्-रिपुदलनाशिनीम्।
नमामि खड्गधारिणीम्।
कथयन्ति जनास्त्वां कथं देवि अवलाम्-वन्देमातरम्॥
त्वमेवविद्या—त्वमेवधर्म-त्वमेवद्रविणम्-त्वमेवशर्म।
त्वंहिप्राणाः शरीरे-वाह्वोर्मेत्वमेवशक्ति-हृदये अम्ब त्वमेव भक्ति॥
तवैवप्रतिमामातर्दृश्यतेप्रतिमन्दिरम्।
त्वंहि दुर्गा दुर्गोतिहारिणी दशायुधधारिणी।
त्वंहि कमलाकमलदलविहारिणी।
वाणीविद्यादायिनी नमामित्वाम्॥

नमामिकमलाम्-अमलाम्-अतुलाम्-सुजलाम्-सुफलाम्-मातरम् ।
श्यामलाम्—सरलाम्-सुस्मिताम्-भूषिताम्-धरणीम्—भरणीम्-तारणीम्-मातरम् ॥ वंकिमचन्द्र ।

अयिभुवनमनोमोहिनि—निर्मलसूर्यकरोज्वलधरणि--जनकजननीजननि ।
नीलसिन्धुजलधौतचरणतल —अनिलविकम्पितश्यामलअञ्चल ।
अम्बरचुम्बितभालहिमाचल —शुभ्रतुषारकिरीटिनि ।
प्रथमप्रभातउद्यतवगगने —प्रथमसामरवतवतपोवने ।
प्रथमप्रचारितववनभवने— ज्ञानधर्मबहुपुणयपावनि ।
चिरकल्याणमयीत्वंधन्ये – देशविदेशेवितरितअन्ने ।
जान्हवियमुनाविगलितकलुषे—पुणयपीयूषस्तन्यवाहिनि ॥ वन्देमातरम्
रवीन्द्रनाथ ।

LAST COMMISSION—अन्धों की जांच ।

पाठक यह कोई विलायती कमिशन नहीं है वरन देशी कमिशन है जो अन्धों की जांच के लिये कई मित्रों की सहायता से किया गया है ॥

एक दिन हम सब लोग कई एक मित्रों के साथ सुभाषित गोष्ठी के सुख का अनुभव करते हुये अनेक इधर उधर की गपशप के उपरान्त यह बात छिड़ी कि सब से बड़ा अन्धा कौन है ! देर तक तकरीर और वहश के पीछे यह तै पाया कि हमी लोगों में चार मित्र जाकर इसकी जांच करें और तब आ यह रिपोर्ट मित्र मण्डली के आगे पेश करें । दूसरे दिन भोर को उठते ही चारो मित्र इसकी जांच को चल खड़े हुये और उनकी जांच में जो तै पाया वह यह है ॥

ये चारो कुछ थोड़ी दूर चले थे कि एक साफ सुथरा मकान देख पड़ा । मालिक मकान को सुचित्त बैठे देख हम लोगों ने आगत स्वागत के उपरान्त पूछा कहिये साहब यह मकान आपही का है ।

कुसूर माफ हो तो आप से कुछ पूंछा चाहते हैं। यही कि आप क्या काम करते हैं?

मालिक मकान। मैं एक मामूली गृहस्थ हूं नौकरी से अपना पेट पालता हूं और किसी तरह दिन काटता हूं। माफ कीजिये यह तो हम समझते ही थे। कितने दिनों से आप इसी हालत में हैं? सिवा पेट पालने के और भी कुछ करते हैं? कभी अपनी तरक़्क़ी Improve. करने की भी कुछ कोशिश आपने की है?

मा-म-जी नहीं इस दशा में रहते आज मुझे पूरे १८ वर्ष गुज़रे। क्या करना है ईश्वर खाने को दिये जाता है तब क्या प्रयोजन कि झंझट सिर पर लादें (बुधुआ पान ला) अजी गृहस्थ के लिये इतना काफी है। सबेरे ९ बजे नौकरी पर गये शाम को दफ़्तर से लौटने के उपरान्त हाथ मुंह धो कुछ जल पान कर घर का जो कुछ काम काज रहा किया शाम हुई व्यालू से फारिग हो सो रहे बस हो गया। अच्छा तो आप लोग पधारें हमारे आफिस जाने का समय अब आया है॥

चारो मित्र। क्यों भाई अब इन्हीं से अन्धों की जांच शुरू कर दें। १० वर्ष तक ऐसी दशा झेलते आये और कभी तरक़्क़ी करने की चेष्टा न की। नोट बुक में यह रिमार्क हुआ पहली श्रेणी के अन्धे ऐसे लोग हैं॥

आगे बढ़े बाज़ार में पहुंच देखा तो एक महाशय दो एक सण्ड मुसण्ड गेरुआ वस्त्र धारियों को हाथ जोड़ कुछ दे रहे हैं और बाबा जी कुछ पढ़ असीस दै चंपत हुये। हम लोगों ने यह रिमार्क लिखा ऐसे को दै मुफ़्तखोरों का दल बढ़ाने वाले दूसरी श्रेणी के अन्धे हैं॥

१८ बज गया धूप कड़ी हो गई थी दूसरी जून फिर चलने की ठहरी। चारो मित्र टहलते हुये चौक में पहुंचे तो देखा दो एक बाबा जी सोफियाने इक्के पर जा रहे हैं पहिया जिसकी रबरटयर से कसी है उनके ढंग से मालूम हुआ कि ये अखाड़े वाले फकीरों में से हैं। चारो

इन्हीं के पीछे हो लिये थोड़ी दूर चल इक्का एक कोठी के दरवाज़े रुक गया। पूछने से मालूम हुआ बाबा जी इन दिनों एक मुकदमा लड़ रहे हैं उसी के लिये रुपया लेने आये हैं। रुपया कर्ज़ नहीं किन्तु निज का कुछ जमा है उसी को लेने आये हैं नोट बुक में लिखा गया इन बाबा जी फकीरों को देने वाले तीसरी श्रेणी के अन्धे हैं। जिन्हें इतना भी नहीं सूझता कि ये विरक्त काहे के हैं बरन गृहस्थों के कान काटते हैं। कोठी का हाल पूछने से मालूम हुआ कि लाला जी गद्दी के खट-मल बने ब्याज खाते पड़े रहते हैं। रुपये का प्रमिसरी नोट लेते चले जाते हैं। चारो में से एक बोला भाई अब चलना चाहिये इनसे बढ़कर अन्धा कौन होगा रुपये के बदले कागज़ लिये रक्खे हैं जिस्से ४ या ५ रुपया सैकड़ा सालाना से अधिक आमदनी नहीं हो सकती। वही रुपया अगर किसी रोज़गार में लगाते तो दूसरों की कितनी जीविका होती और अपने को फायदा रहता॥

दूसरा—नहीं भाई अभी देखते चलो इनसे भी अधिक अन्धे होंगे ईश्वर की सृष्टि में एक से एक अद्भुत जानवर पड़े हैं॥

सब– हां ठीक कहते हो किन्तु पहले इसे लिख लो—नोट बुक में रिमार्क हुआ। बेरोज़गार प्रमिसरी नोट खरीदने वाले चौथी श्रेणी के अन्धे हैं। सन्ध्या समय होते देख सब लोग दूसरे दिन ८ बजे फिर मिलने का वादा कर अपने २ घर गये॥

2ND AUGUST.

दूसरे दिन घर से निकलते ही ८ या १२ आदमी सफ़ेद मिर्ज़ई पहिने लम्बी २ लाठी लिये झपटे चले जाते नज़र आये। पूछने से मालूम हुआ आज मुकदमे की तारीख है वकील साहब के यहां जाते हैं॥

चारो में से एक—क्यों भाई कलही घर बैठ रहने की राय थी। देखिये ये लोग उनसे ज्यादे अन्धे हैं या नहीं। दौड़ैं धूपैं रुपया खर्चैं अन्त को क्या ते होगा सो कुछ मालूम नहीं। आपस ही में तै कर लेते तो कितना

अच्छा होता अस्तु। सबों की राय से नोट बुक में लिखा गया वकील और मुखतारों की उदरदरी को पाटने वाले पंचई श्रेणी के अन्धे हैं॥

थोड़ी दूर चले थे कि एक साहब दिखाई दिये जो मज़े में मग्न नाली के पवित्र पानी का स्वाद ले रहे थे। सबों की राय से स्थिर किया गया कि यह सब से बड़ा अन्धा है रुपया खर्च करता है बेइज़्जत हो नारी में लोटता है। रिमार्क हुआ नशा पीने वाले छठई श्रेणी के अन्धे हैं॥

आगे बढ़े तो एक लम्बा चौड़ा मकान देख पड़ा जहां बहुत से मनुष्य इकट्ठे थे हम लोग भी बेरोक टोक वहीं चले गये पहुंचने पर जाना कि यह कोई "लइब्रेरी" पुस्तकालय है। एक बूढ़ा जिसके सिर के बाल चांदी से चमक रहे थे कुछ पढ़ता है और सब लोग ध्यान जमाये सुन रहे हैं। सन्नाटा खूब छाया था अन्दाज़ से मालूम होता था कि इस पुस्तकालय के मौरास का पट्टा इस बूढ़े ने अपने ही नाम का लिखा रक्खा है। लोगों के चेहरों से प्रगट हो रहा था कि ये सब कोई खुशखबरी सुन रहे हैं। थोड़ी देर बैठने के बाद मालूम हुआ कि समाचार पत्र में लार्ड कर्ज़न का इस्तयाफा छपा है जिसे सुन सब प्रसन्न हैं और कर्ज़न की निन्दा कर रहे हैं। यह देख चारो मित्र लौट पड़े और उन्होंने निश्चय किया कि अन्धों की लिस्ट में कर्ज़न का नाम होना ज़रूर है क्योंकि ये न विलाइत के लोगों को खुश कर सके न यहीं वालों को "दोनों दीन से गये पांड़े न रहे भात न रहे मांड़े"॥

लइब्रेरी के बाहर होते ही एक रत्थी देख पड़ी सब लोग उसी के पीछे हो लिये। हाल पूछने से मालूम हुआ कि यह चिथरूमल साव की रत्थी है। इनकी हिस्टरी History. यह है कि यह बड़े धनी थे किन्तु बज़् सूम थे सिवाय स्वार्थ के और कुछ जानते ही न थे। स्वार्थ साधन निमित्त स्त्री को मा कहने में ज़रा नहीं सकुचाते थे। मरते समय तक न बता गये कि इनका रुपया सब कहां गड़ा है और चल बसे। जब से बाप की गद्दी पर बैठे आज तक दूध नहीं पिया। किसी को

कुछ देना कैसा द अक्षर कान में पड़ जाने से इन्हें जूड़ी आने लगती थी। इत्यादि इनके अनेक अपावन इतिहास हैं जिन्हें सुन रौरव यात्रा की यातना अति सुलभ है। सबों के मन में यह कट्टर सूम सब से बढ़-कर अन्धा जंचा और चारो ने अपने २ घर की राह ली। रिमार्क हुआ स्वार्थी जितने अन्धे अब तक जांचे गये उन सबों की एक बड़ी चौड़ी फोटो है॥ R. A.

काशीबाले क्या सोशलकानफरेन्स न रोकैंगे ?

कानग्रेस पंडाल में कानफेरेन्स का होना हिन्दुस्थानी का केन्द्र काशी की नाक काट लेना है। धिक् काशी के पण्डित और वहां के धर्म धुरीणों को कि कानफरेन्स संशोधन के बहाने उन के सिरहाने बैठ उन के पवित्र धर्म पर वंकागोला चलावै और वे न चेतैं न इन कपट-कापटिकों की इस मण्डली के उच्छेद का कुछ प्रयत्न करैं। वास्तव में यह कानफेरेन्स क्या है और क्या किया चाहता इसे हम कई बार लिख चुके हैं पुनः २ उसका उद्घाटन पिष्ठ पेषण है। धर्म महा मण्डल भी इसके अनुमोदन में तत्पर है तब यह धर्म मण्डल काहे का हुआ अस्तु।

स्वदेशी वस्तु के प्रचार पर पिता और पुत्र का संबाद।

पुत्र--पिता जी आज कल स्वदेशी बस्तु के प्रचार पर बहुत आंदोलन हो रहा है, न जानिये इसका क्या परिणाम होगा ?

पिता--आंदोलन तो हो रहा है पर इसके प्रचार पाने का कुछ रंग नहीं दिखाई देता है॥

पुत्र--क्यों पिता जी इसके चल जाने में क्या संदेह है ? इसके प्रचारक तो बड़े २ विद्वान् और धनाढ्य पुरुष हैं और समस्त भारतवर्ष के लोग इस में तन, मन, धन से तत्पर जान पड़ते हैं। एक दिन हमारे पाठशाला में इसी विषय पर बाबू रामानन्द चटर्जी ने एक

हृदयग्राही व्याख्यान दिया था जिस के सुनने को लगभग सहस्र मनुष्यों के एकत्र थे और व्याख्यान के अंत में मैंने सुना था कि लगभग ३०८ मनुष्यों ने छोटे २ पत्रों पर हस्ताक्षर करके यह प्रण कर लिया है कि भविष्य में वे विदेशी वस्तुओं को निज व्यवहार में कदापि न लावेंगे, जिस से सभा को और भी हर्ष प्राप्त हुआ था ॥

पिता--हां सच है पर यह एक ऐसा कार्य है कि जिसके लिये दृढ़ता की विशेष आवश्यकता है। यह खेल नहीं है कि केवल हस्ताक्षर ही करने से हो जायगा इस रास्ता में बहुत से बटमार ठग लगेंगे। यह रास्ता इंगलैण्ड, जरमनी आस्ट्रेलिया और अमरिका आदि वालों के हृदय को विदीर्ण करके सुरलोक को गई है। इस में बड़ाही क्लेश भोगना पड़ेगा। यह राह एक तो विदेश में होकर गई है दूसरे विदेशियों का पहरा इसमें है। पर अब तो जो हो गई सो हो गई। धैर्य्य धर कर आगे ही बढ़ना निश्चित जान पड़ता है नहीं तो हमारे दीन भारत की जो दशा इन निर्द्दई विदेशी व्यापारियों के हाथ से बदी है उसे प्रायः प्रत्येक मनुष्य जानता है ॥

पुत्र--पिता जी लोगों की दृढ़ता में तो कुछ संशय नहीं जान पड़ता है क्योंकि इस समय हमारे दो उत्सव अर्थात् "रामलीला और दुर्गापूजा" रहे हैं इन में आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि अनेक मनुष्य स्वदेशी वस्त्र धारण किये हुये थे। जिस से प्रत्येक मनुष्य को जिसे अपने देश की थोड़ी भी प्रीति होगी वह निश्चय हर्षित होता होगा ॥

पिता--बेटा इस समय तो लोगों का उत्साह अधिक है यदि इसी प्रकार लोग मन को अचल रक्खेंगे तो आशा है कि हमारे देश की दशा पुनः परिवर्तित हो जावेगी। इसके सिवाय यदि विद्वान् लोग प्रतिमास इस विषय पर अपने २ नगर में व्याख्यान देना अपना मुख्य धर्म जान लें तो इस से अधिक और क्या भलाई हो

सच्ची है ॥

पुत्र पिता जी ! हमारे देश में कितने रुपयों के विदेशी वस्त्र आते होंगे ?

पिता इन बातों के उदघाटन में दुःख होता है-हम समझते हैं १०८८०००८००) रुपये से अधिक के प्रतिबर्ष कपड़े आते हैं

पुत्र आपने कहा है कि इस विषयपर व्याख्यान देना अत्यन्त गुणकारी होगा तो संभव है कि लोग बनारस कांग्रेस में भी इस विषय पर कुछ कहें ?

पिता-हां कहना तो कुछ चाहिये ॥

पुत्र पिता जी यह कांग्रेस अपने ढंग का अद्वितीय होगा क्योंकि इसमें जितने लोग पधारेंगे वे देश का बना कपड़ा पहने रहेंगे ॥

पिता बेटा! इस बात को तुम ध्यान में रखना कि यह कांग्रेस भारत भाइयों की दृढ़ता की कसौटी है। लोगों की प्रीति अपने देश की ओर जितनी होगी वह इसमें कसी जायगी जन्मभूमि बात्सल्य की यह प्रथम परीक्षा है ॥ जोखन मिश्र ॥

कवि गिरिधर की कुछ बातें।

भाषा का रसिक कौन होगा जो गिरिधर के नाम से परिचित न हो। परन्तु गिरिधर कौन थे? कहां के रहने वाले थें? उनका जीवन कैसा था? वे किस ख्याल के मनुष्य थे? इन बातों का पता कदाचित् प्रदीप के पढ़ने वालों को न होगा। अतः उनका हाल जैसा लाला चुन्नीलाल रईस गोविन्दपुर से सुना है पाठकों की भेंट करते हैं कदाचित् उससे उनका कुछ मनोरंजन हो ॥

कवि राय गिरिधर के बारे में पहिले रावल मल दिल्ली वाले ने हमें कुछ सुनाया था कि वह एक पिट्ठी पीसने वाला पुरुष था किन्तु विलक्षण प्रतिभा का था--पिट्ठी पीसते २ कुण्डलिया बना लिया करता

था। हमें भी उनके कहने का निश्चय हो गया था इसलिये कि बुद्धि किसी के पास गिरों नहीं है। साधारण मनुष्यों में बहुधा विचित्र प्रतिभा पाई जाती है या प्राक्तन संस्कारों के कारण ऐसा होना कोई नई बात नहीं है। प्रतिभा प्रायः संस्कार जन्य होती है कालिदास शेक्सपियर मिलटन आदि जो ऐसे विशिष्ट कवि हुये यह प्रतिभा ही का कारण है। बनारस में सहिबना एक पंखा बेचने वाला है पढ़ा लिखा एक अक्षर नहीं है पर काशी में जितनी कजली गाई जाती है सब उसी की बनाई है और खड़े २ कजली बना देता है। गिरिधर जाति के खत्री ग्राम झिंगड़ तहसील दसूहा ज़िला होशयारपुर पंजाब के रहने वाले थे। घर गृहस्थी त्याग सन्यास आश्रम में आ गये थे। इनका पहिला नाम हरिदास था उपाधि गिरिधर थी अर्थात् लोग इन्हें गिरिधर के नाम से प्रसिद्ध किये थे। कोई कहते हैं यह उदासी हो गये थे जो हो पर वस्तुतः यह स्वतंत्र प्रकृति के साधू थे इनको किसी मत मतान्तर में आग्रह न था और वेदान्त के सिद्धान्तों पर इन्हें पक्की निष्ठा थी जैसा उनकी कुण्डलियों से प्रतीत होता है। तिब्बत में भी यह इस इच्छा से गये थे कि उमर बढ़ाने के साधनों को वहां के लोग जानते हैं इससे उनसे उन साधनों को जान आयु वृद्धि करना चाहिये पर वहां जाके उनको मालूम हुआ कि बड़े २ साधन संपन्न भी २५० वर्ष से अधिक नहीं जीते हैं और इनके अधिक जीने का कारण, ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, इन्द्रिय दमन आदि है। परन्तु अधिक जीवन से हो ही गा क्या? आख़िर मरना ही पड़ैगा ऐसा समझ कर वे लौट आये॥

आप सन्यासावस्था में साधु मण्डली में प्रविष्ट होकर अनेक देशों में भ्रमण किया करते थे और उनके हृदय में वैराग्य का पूर्ण प्रादुर्भाव था। एक बार आप घूमते २ मारवाड़ में गए, कई एक और २ साधु भी संग थे। १९वीं शताब्दी में भी, अन्तिम भाग को छोड़ यह देश रंजा पुँजा था, देश में धन धान्य किसी क़दर अच्छा था आज कल की तरह

क्रूर जनों की भरमार न थी। राज्य करने वाले लोग अच्छे ही होंगे। अस्तु। मारवाड़ के चूरू नगर में जब आप अहुंचे तो सब साधुओं का एक किसी सेठ ने निमन्त्रण किया, सेठ साहब अच्छे धनाढ्य थे, सेठजी ने भोजनार्थ सब के सामने सोने की थालियां और गिलास रक्खा, भोजन के अन्त में सेठ ने गिरिधर जी की विरक्तता की परीक्षार्थ कहा महाराज यह भोजन थाली आदि के सहित ही है अतः आप लोग थाली आदि अपने २ घर लेते जाइये। उन दिनों उनके साथ एक साधु गुलाब सिंह थे उनसे उन का प्रेम था, सेठ से ऐसा सुन बहुत से साधु लोभाक्रान्त हुए बहुतों की इच्छा हुई कि बर्तन ले चलना चाहिए। ठीक है-वित्तैषणादि से निवृत्त होजाना साधारण काम नहीं! उस समय गुलाब सिंह ने गिरिधर जी की तरफ़ देखा और गिरिधर ने गुलाब सिंह की तरफ़ देख झट उठ खड़े हुए, उठकर साधुओं की तरफ़ इशारा करके यह कुण्डलिया कहा:—

लोभी होवे सन्त जो पौला तिसके शीस।
पैरों लाय अठारियां मारो दस वा बीस॥
मारो दस वा बीस पचासक और लगाओ।
झाड़ झपट के राह फकर का फेर बताओ॥
कहैं गिरिधर कविराय सुनो जन मन के बोधी।
स्वान बांग ललकार सन्त जो होवै लोभी॥

सेठ जी ने कहा कि जैसा आप को सुनते थे वैसाही पाया॥

यह मण्डली में प्रायः रहा करते थे, पर जब चलने की अर्थात् पृथक् होने की इच्छा होती तौ बिना किसी से पूछे चल दिया करते थे, यह भी उनके एक अच्छे वैराग्य का चिन्ह है। आज कल के साधुओं की तरह वे संग्रही न थे, अन्यथा उनके मठाधिपति बनने में क्या सन्देह था? एक बार उनके पास उनके पुरोहित कोई ब्राह्मण देवता धन पाने की इच्छा से आए और उन्हें बहुत तंग किया कि हमें कन्या

के बिवाहार्थ ५००) रुपया दिलवा दीजिए। आग्रह करने पर उन्हों ने कनखल में भगवद् गीता की कथा की गीता के उनके किये अर्थ को सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुये और चढ़ावे में १५००) रुपया आया। तब पुरोहित ने कहा मेरे लिये आपने कथा करी इसलिये सब रुपया मुझे मिलना चाहिये। परन्तु गिरिधर जी ने फ़र्माया कि जितना तुम्हें अपेक्षित है अर्थात् ५००) रुपया उतना ही दिया जायगा अधिक नहीं। उन्होंने वैसाही किया और शेष रुपया ब्राह्मणों के कार्य्य में अर्थात् भोजन आदि में लगाया। इतनी उदारता दिखलाने पर भी उन्हें किसी प्रकार का अभिमान नहीं हुआ। वे भण्डारे के दिन भी स्वयम् भिक्षा करने गये और जो गृहस्थों के यहां से मिला उसी से निर्वाह किया नियम पालन इसका नाम है। एक बार एक ब्राह्मण आया और कहने लगा कि आप को कोई रसायन बनाना आता है उन्होंने कहा हमें रसायनादि बनाना कुछ नहीं आता किन्तु जो लोग हमें दे जाते हैं वह वस्तु हम औरों को दे छोड़ते हैं हमारे पास तो केवल एक लोटा एक सोटा एक गुदड़ी है इसके सिवाय हम और कुछ नहीं रखते—तथापि उसने नहीं माना और हठ किया तब अन्त में गिरिधर जी ने कहा निर्वाह मात्र रसायन तौ हमें प्राप्त है-तब ब्राह्मण ने कहा कि हमें निर्वाह मात्र ही रसायन बता दो कहने लगे कि अच्छा चलो हमारे साथ। भिक्षा के समय उसे सङ्ग लेकर चल दिये और एक गली में भिक्षा के लिये घुस गये और कहा हम भिक्षा रसायन के वास्ते जाते हैं तुम इस गली में चले जाओ वह समझ गया कि यह रसायनी साधु नहीं है और चल दिया।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि आप मण्डली में रहा करते थे परन्तु कभी २ एकाकी बिचरा करते थे अमृतसर में जब इकल्ले विचरते हुये गये तब वह एक साधारण वेश में हरि मन्दिर में घुसने लगे; लोगों ने उनको टोका तो आप को कुछ क्रोध आया बस क्रोध आने की देर

थी कुण्डलिया बनाना उनके घर की खेती थी झट आपने खड़े २ कुण्डलिया कहा :—

मन्दिर में कञ्जर बसें, अथवा बसें चमार।
साधु सन्त का सार न जाने, चाम दाम के यार॥
चाम दाम के यार, पुजारी मति के मैले।
देह अभिमानी मूढ़, हाड़ बिष्ठा के थैले॥
कहें गिरिधर कविराय, जुड़े बहु स्वार्थी बन्दर।
अथवा बसें चमार, पुनः कञ्जर हरि मन्दिर॥

सिक्खों को पता लगा कि गिरिधर जी हैं तब उन्होंने बड़ा आदर किया परन्तु वहां ठहरे नहीं और चल दिये उनकी आदत थी कि सायंकाल को भिक्षा करने नहीं जाते थे किन्तु किसी एक पुरुष से कह दिया करते थे कि हमें दो रोटी पहुंचा देना और बाहर जंगल में ठहरते थे। एक बार एक धर्मशाला में सायंकाल को पहुंचे धर्मशाला सिक्खों की थी सिक्खों ने मामूली आदमी समझ कर नहीं ठहरने दिया तब क्रोध में आकर कूंचे के पास जा ठहरे जिस आदमी से भोजन के लिये कह गये थे वह जब भोजन लेकर धर्मशाला में पहुंचा तब धर्मशाला में नहीं मिले। फिर उन्होंने इधर उधर खोजा तो वे कूंचे के पास मिले। भोजनदाता का नाम पण्डित प्रभुदयाल मिश्र था ये श्री गोविन्दपुर के रहने वाले थे और उनके बड़े प्रेमी थे इन्होंने पूछा कि आप धर्मशाला से क्यों चले आये तब उत्तर में जो उन्होंने कुण्डलिया कहा वह यह है :—

भाई बहड़े (बुरे) पूतने (प्रेत) रहत गुरां ते दूर।
पढ़ २ बेचें ग्रन्थ को चुर चुर मरत मजूर॥
चुर चुर मरत मजूर व्यर्थ ही दन्त खिजावें।
वाघड़ (वन) बिल्ले वाङ्ग् (तुल्य) देखकर झपट चलावें॥
कहें गिरधर कविराय सन्त से दुर्जन तांईं।

रहे गुरां से दूर भूत से बहड़े भाई ॥

इनकी जीबिनी से हमें स्पष्ट भासता है कि यह स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे और वैराग्य आदि की अच्छी शिक्षा मिलती है। ये लकीर के फकीर वाले साधु नहीं थे जो केवल पञ्चदशी रटकेही रह जांय किन्तु अंगरेज़ी भी जानते थे पञ्जाब के राजा दलीपसिंह से मिलने विलायत गये थे और वहीं इनका देहान्त हुआ—अब ऐसे कुण्डलिया बनाने वाले बिरले ही कहीं होंगे अस्तु उनके वेदान्त विषय की कुण्डलिया यहां दी जाती है ॥

नारायण वह आप है स्वप्रकाश विज्ञान।
निज स्वरूप ते भूलकर कल्पित है अज्ञान ॥
कल्पित है अज्ञान नाना बिधि नाच नचावे।
घटी यन्त्र ज्यों इर्द गिर्द इत उत भरमावे ॥
कहैं गिरधर कविराय खाय जब ज्ञान रसायन।
स्वप्रकाश विज्ञान आप को कहैं नारायन ॥

शान्ति विषय में:—

हे मन ऐसो काज कर जामें पावै शान्ति।
राग द्वेष मिट जांय सब आशा तृष्णा भ्रान्ति ॥
आशा तृष्णा भ्रान्ति नीच गति है ये पापिन।
जिसके अन्तर बसै तिसी को डसै है सांपिन ॥
कहैं गिरधर कविराय ज्ञान कर तू उत्पन रे।
निखिल अन्धेरा नशै द्वैत फिर रहै न मन रे ॥
जाके अन्तःकरण में रागद्वेष की आग।
ताको सुख स्वप्ने नहीं शान्ति न लहे अभाग ॥
शान्ति न लहै अभाग फिर किसी प्रकारा।
बिना ज्ञान नहिं मुक्ति वेद का बजै नगारा ॥
कहैं गिरधर कविराय धूलि शिर डारो वाके।

रागद्वेष की अग्नि जलत है अन्तर जाके ॥
वैयाकरणी कहत हैं जाको नाम स्फोट ।
चतुर* षष्ठ दश अष्ट की उसी लक्ष्य पर चोट ॥
उसी लक्ष्य पर चोट चलावैं खैंच कमाना ।
तीरन्दाज अनेक सबन का एक निशाना ॥
कहैं गिरधर कविराय पड़ो मत तिस्की शरनी ।
जाको नाम स्फोट कहत जग वैयाकरणी ॥

भी० से० शर्मा, गुरु कुल ।

——

बीर ब्रत पालन ।

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास बङ्ग भाषा के विख्यात लेखक बाबू हारानचन्द्र के "मन्त्रसाधन" का अनुबाद है इसमें बीर केशरी महाराणा प्रतापसिंह तथा नीति कुटिल अकबर का वृत्तान्त उपन्यास रूप में दिया गया है- यह उपन्यास "जीवन सन्ध्या" तथा राधाकृष्णदास-कृत "प्रताप नाटक" से बिलकुल मिलता जुलता है । हम नहीं कह सकते लेखक महाशय ऐसे उपन्यास के अनुबाद करने पर क्यों रीझे जिनके विषय की और भी किताबें भाषा में मौजूद हैं और साथही इसके यह कि इस किताब का तर्ज़ कुछ निराला नहीं Plot व और बातैं सब वही जो उन किताबों में हैं । कदाचित् लेखक महाशय की यह मन्शा हो कि ऐसे बीर पुरुष का चरित्र लोगों में और भी अधिक प्रसिद्ध हो तो यह लेखक का निरा नयापन है जबकि आपने हिन्दी भाषा को Sanskritized करना अपना मुख्य कर्तव्य समझा है-मेरी समझ में ऐसे बीर का चरित्र तभी प्रसिद्ध हो सकता था जबकि पुस्तक की भाषा सहज से सहज होती पर यहां तो "हर्रा लगै न फिटकरी रंग चोखाआवै"-

* ४ वेद षट् दर्शन, १८ पुराण स्मृत्यादि ।

लेखक महाशयने मेरी समझ में "मन्त्रसाधन" का अनुवाद करने में उसकी क्रियाही को बदल जैसी की तैसी उसी की भाषा को रख अपनी पूरी पण्डिताई झलकाया है-मालूम होता है आज कल की लूट-खसोटनी हिन्दी में जहां कई Style निकली है तहां लेखक महाशय ऐसी भाषा निकाल कर एक नई तिवारी Style हिन्दी निकालना चाहते हैं--इस की टटोल जिनको लेना हो वे नीचे के उद्धित किये वाक्यों से ले सक्ते हैं-"सद्योनिःसृत उत्तम शोणितधारा" "पूर्णशक्ति सपन्न अधीश्वर" "आदर अभ्यर्थना', आदि बीच में इने गिने 'मंजूर' 'ख़ास कर" ऐसे दो एक शब्द कैसे टपक पड़े हम नहीं कह सक्ते। इन के सिवाय इस ग्रन्थ में प्राकृतिक बहुत से दोष हैं पर इन दोषों के भागी तिवारी जी नही हो सक्ते क्योंकि सम्भव हो कि ये दोष बङ्ग लेखक महाशय के हों अन्त में यदि ऐसे बीर का ऐतिहासिक वृत्तान्त इसमें है तो पुस्तक को अच्छीही समझना चाहिये मूल्य १)८० अधिक है मिलने का पता-पं-बनवारीलाल तिवारी सराफा बाज़ार लश्कर ग्वालियर ॥

विज्ञापन।

REGISTERED No. A—308.

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहिं टरै ॥
सूझै विवेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २७ }
सं० १२ } प्रयाग { दिसम्बर
{ सन् १९०५ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) —०*०— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

—:००:—

हिन्दीप्रदीप

जि० २७ संं० १२ | प्रयाग | दिसम्बर सन् १९०५ ई०

पहले इसे पढ़ते चलिये ।

यह बारहवीं संख्या है वर्ष पूरा हो गया। ठीक समय से न निकलने की त्रुटि भी अब न रही तब यह विकत्थन हमारा क्या अनुचित होगा कि लेख चातुरी में हम अपने सहयोगियों में किसी से कम नहीं हैं और अब ठीक समय से भी उपस्थित होने लगे । ठीक समय से निकलने पर खर्च तो बढ़ गया आमदनी न बढ़ी । इच्छा थी इसी वेतन में अपना आकार और बड़ा कर मास के आरम्भ ही में सेवा के लिये उपस्थित होते किन्तु क्या करें कहावत है "बीता भर की खूंटी क्या गाड़ें क्या उखाड़ें"-चेष्टा तो हमारी यही रहती है कि हम किसी तरह बोझ न हों बरन आपको रिझाय और प्रसन्न कर मूल्य उगाहें । मान

लेर कदाचित् बोझ हरे हैं तो देने का पाप दिये से कटता है। पानी का टिक्कस या दवा का कड़ुआ प्याला घूंटने की भांत आंख मूंद कड़ा कलेजा कर वेतन का हमारा अल्प मूल्य फेंक दीजिये। अब तो यह बोझ सिर पर से किसी तरह दूर हटै साल भर बाद फिर कहा सुना जायगा मरी अकाल आदि उपद्रवों से जीते बचैंगे तो देख लेंगे। इसमें बड़ी भलाई तो यह है कि प्रति मास तकाज़े के कार्ड का हमारा एक पैसा बच रहेगा और मूल्य वसूल करने में जो किच किच करना पड़ता है उस झंझट से गला छुटा रहेगा। आगे से नियम करना पड़ेगा कि जो अग्रिम मूल्य न भेज दें वे पक्के ग्राहक नहीं उनकी कचोलोई न उनकी सेवा के लिये हम बाध्य रहेंगे किमितिशम् ॥

निज वृत्तान्त।

पुराना चर्खा ओटने की भांत निज वृत्तान्त कह सुनाना आपका बहुमूल्य समय नष्ट करने की भांत है। किन्तु कई मित्रों के अनुरोध से कि प्रदीप का संक्षिप्त इतिहास जानने की बहुतों को लालसा है हमें ऐसा करना पड़ता है। ईश्वर के अनुग्रह से अब इस समय हिन्दी साहित्यसेवी बहुत हो गये हैं और दिनों दिन उनकी संख्या बढ़ती जाती है। हमारे प्रान्त के प्रत्येक नगर के सिवाय कलकत्ता बाम्बे और पंजाब जो प्रत्यक्ष में हिन्दी बोलने वाले प्रान्त नहीं हैं वहां भी भाषा के सुलेखकों की संख्या बढ़ती जा रही है और हिन्दी भी अपनी और २ बहिन बंगला गुजराती मराठी के समान साहित्य भण्डार का आगार होती जाती है। प्रति वर्ष दे। चार मासिक और साप्ताहिक पत्र नये निकलते हैं किन्तु एक समय वह भी था जब कुटिल आकृति धारण करने वाली वामावर्तिनी कराला उर्दू के सिवाय देश में हिन्दी का नाम भी न था। दाहिनी ओर से हिन्दी को लिखते देख लोगों को अचरज होता था कि क्या कोई ऐसी भी लिखावट है जो बांयें हाथ

की ओर से नहीं लिखी जाती। वर्तमान् हिन्दी साहित्य के जन्मदाता प्रातः स्मरणीय सुग्रहीत नामधेय बाबू हरिश्चन्द्र तथा दो एक उन्हीं के समकक्षों को छोड़ सुलेखकों का सर्वथा अभाव था। भाषा साहित्य भा-कर पं० प्रताप का उदय भी तब तक नहीं हुआ था। श्री राधाचरण चंचरीक साहित्य मंजरी का मधुपान करते किसी कुसुमावली में छिपे पड़े थे मधुप की प्रौढ़ दशा तक नहीं पहुंचे थे। तात्पर्य यह कि हिन्दी साहित्य का आकाश उस समय तक सब ओर से धुंधला था उर्दू चाण्डालिन इतना आक्रमण किये थी कि हिन्दी को प्रकाश के लिये कहीं अवकाशही न था। इन दिनों तो खड़ी और पड़ी के न जानिये कितने भेद चल पड़े हैं पर उस समय लेख प्रणाली के दो ही परमाचार्य समझे जाते थे राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र। पहले भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र भी राजा को अपना गुरुवर मानते थे किन्तु हरिश्चन्द्र सा उदारचेता और राजा साहब का सा स्वार्थ परायण का साथ कब निभ सक्ता था। दोनों की दो तरह की प्रकृति देख हमें अचरज था कि यह आम इमली का मेल कैसा? अन्त को यही हुआ भी कि हरिश्चन्द्र को गवर्नमेन्ट की ओर से फीका कर देने के पहिले कारण राजा हुये। पीछे तो यह भी खुल खेले और ऐसें २ उत्तेजक लेख उनकी लेखनी से प्रगट हुये कि कर्मचारियों को उन की ओर से खटक हो गई। अस्तु बाबू साहब के इतने परिश्रम पर भी हिन्दी बालिका की मुग्ध दशा बनी रही उर्दू को प्रौढ़ होते देख इसे अपने में प्रौढ़ता आने की लालसा रही आई और जिस्के लिये सदा यह लालायित रही कि कब वह दिन आवेगा कि हम भी अपनी और २ बहिनों की भांत पुस्तकालयों की बड़ी २ आलमारियों का एक कोना छेंक लेने लायक हों॥

भाषा के ऐसे बाल्यकाल में हिन्दी के हितू और प्रेमी कतिपय छात्रों की एक मण्डली हमारी जन्मदाता हुई। एक २ छात्र ने पांच २

रुपये चन्दा दै कुछ रुपये मूल धन की भांत इकट्ठे कर प्रति मास १८ पृष्ठ का एक मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया और पुस्तकाकार इसे इसलिये रक्खा कि जिस्में पंसारियों की पुड़िया बांधने के काम का न रहे वरन जिल्द बांध लोग रख सकें। पर फिर भी सन्देह बना रहा कि लेख किसी काम का न हुआ ता यह पंसारियोंही के काम का रहेगा हमें प्रकाश करतें हर्ष होता है कि यह अब तक उस तरह का न हुआ वरन इस्के एक २ अंक चटकीले लेख से भरे रहते हैं। जिसने एक अंक पढ़ा होगा उसे दूसरा अंक पढ़ने की रुचि अवश्य रहती होगी। जी ऊबता और उचटता हो मन उदास हो इस्की पुरानी जिल्द खोल बैठ के पढ़ने लगिये सब रंज रफा हो मन आनन्द सन्दोह में मग्न हो उठैगा कुसुम की कली सी दन्तावली विकसित हो जायगी। हिन्दी रसिकों का ता प्रदीप प्राण तुल्य होगा-किन्तु मूड़ मुड़ाते ही ओले पड़े हमें प्रगट हुये देर न हुई थी कि प्रेस ऐक्ट का जन्म हुआ। प्रेस ऐक्ट का नाम सुनते ही छात्र मण्डली छिन्न भिन्न हो गई। निज उन्नति के आगे हिन्दी की उन्नति का उत्साह भंग हो गया कोई २ ता यहां तक दुम दबाय दबक बैठे कि माना उनसे बड़ा अपराध बना जो इसके लिये १) चन्दा दै इसके मेम्बर बने और सोचने लगे कि इस पाप का प्रायश्चित किस भांत हो जिसमें आगे का यह किसी के मुख से न निकल जाय कि छात्र दशा में ये भी हिन्दी के हितैषी थे और ऐसे एक पत्र के सहायक रहे जो अराजक विषय के लेख के लिये बदनाम था। अस्तु धीरे २ जितने पहले इसके मेम्बर बने थे सब छोड़ बैठे पर हम अंगीकृत का परिपालन अपने जीवन का उद्देश्य मान प्रति दिन इसे अधिक अधिक अपनातेही गये। प्रेस ऐक्ट की कृपा से बहुत दिनों तक साल में कई बार मेजिस्ट्रेट साहब के यहां तलब किये जाते थे पर भावी कुछ ऐसी अनुकूल रही कि बेदाग बचते ही चले आये। आर्थिक कष्ट जो इसके पीछे उठाते रहे सो एक ओर रहे कर्म-

चारियों की निगाह में चढ़ चाना आर्थिक कष्ट से कुछ कम नहीं। खास कर उस समय जब हमारे इस प्रान्त में शिक्षा का बड़ा अभाव था और लोगों में ज़रा भी साहस और दृढ़ता न थी। समाज में आदर पाना एक ओर रहै जहां जाते थे वहीं हंसे जाते थे और हमारी ज़ीट उड़ाई जाती थी। हमारा आर्थिक कष्ट निवारण निमित्त उदयपुराधीश महाराणा सज्जन सिंह बहादुर ने एक बार हमें १००) दिये थे और एक बार रींवा के श्री महाराजा साहब बहादुर ने ५०) एक बार बहुत ही संकीर्ण दशा में आ गये थे और पक्का इरादा हो गया था कि अब इसे बन्द कर दें उस समय नागरी प्रचारिणी के मुख्य अधिष्ठाता बाबू श्यामसुन्दर दास ने ५०) चन्दा कर हमारी संकीर्णता दूर हटाया और पत्र फिर ढुलक चला। इतनी लालसा हमें बनी ही रही कि अपने निज का एक छोटा सा प्रेस खरीद इसे पाक्षिक कर दिखाते या मासिक ही रहता तो आकार इसका बहुत बड़ा बरन दूने के लग भग का कर समय से सेवा में पहुंचते पर यह हमारी लालसा इस जीवन में काहे को कभी पूरी होने वाली है। अस्तु यह देख हमें बड़ा सन्तोष होता है कि हिन्दी की अवश्यमेव उन्नति होती जाती है और इसके सर्वाङ्ग सुन्दर होने में जो २ कसर है क्रमशः दूर हो रही है। आशा है कदाचित् इसका सर्वाङ्ग सौन्दर्य पूर्ण हो जाने पर हमारी भी चाह लोगों में कभी को हो पर ऐसा समय कब आवै कौन जानता है। इस समय तो हमारा वही हाल है जैसा कवि मण्डली मण्डन श्रीहर्ष ने कहा है॥

"यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी।
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते"।

अथवा

"उत्पत्स्यते ऽस्ति मम कोपि समानधर्मा।
कालोह्ययं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी॥

इस रूखे चर्खे को ओटा चाहें तो कहो पेज का पेज उड़ाते चले जांय पर यह तो हमारा क्रम ही नहीं है कि भरती कर कराय पत्र पूरा कर दें। इतनी सावधानी पर भी हमारे दो एक प्रेमी सहयोगी दोष देते हैं कि पत्र में भद्दापन कम होता जाता है कहीं इस लेख को और अधिक बढ़ावेंगे तो इतने दिनों की कमाई हुई लेख की सुख्याति सर्वथा खो बैठेंगे और यह मसल कि दिल्ली की कमाई चपरघटे में गंवाई इस पर पूरी आ उतरेगी॥

अभ्युदय।

हम अब तक अनेक दुर्घटनाओं की चक्की में बराबर पिसते ही रहे न जानिये कितने क्रूर ग्रहों की दशा का भुगतमान भुगतते न केवल हमारा ही वरन हमारे पूर्व पुरुषों का भी जन्म का जन्म नष्ट गया। क्षिति तल में क्या कोई जाति निकलेगी जो सहिष्णुता में हम से आगे बढ़ी हो? मैं समझता हूं भूमण्डल के प्रत्येक देशों के इतिहास या पुरावृत्त को टटोलो और उसके साथ हिन्दू जाति के पुरावृत्त का मिलान करो तो किसी जाति को इतने दिनों तक निरन्तर नीचे ही गिरते हुये न पाओगे। इण्डियन् आर्किपेलेगो और अफरिका के जंगली फिरके तथा अमरिका के असभ्य Red Indians. भी विदेशियों की सभ्यता का संपर्क पाय शीघ्रमेव उन्नति के सोपान पर चढ़े और तरक्की कैसे होती है क्या उसके रास्ते हैं इसके नमूने या आदर्श हो गये। अघटित घटना पटीयान् परमात्मा की परमोदार कृपाकण के प्रकाश से हम निश्चय अब तक वंचित रहे और क्यों रहे इसका जो कुछ कारण मान लिया जाय किन्तु "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ" की प्रेरणा से हम अब समय खिलाड़ी के गोद का एक ऐसा खिलौना बना चाहते हैं जिसके खेल मे सब ओर एक छोर से दूसरे तक अभ्युदय का राग गूंज रहा है। जिधर सुनो उधर ऋषि प्रणीत पवित्र पावन धर्म का गान कर्ण कुहर को सुख दे रहा है। एक ओर सुशिक्षित नवयुवकों के नवा-

भ्युत्थान का उत्साह मन को सन्तोष और आंख को ठंढक पहुंचा रहा है। चिरकाल की नींद से जगे हुये वन्देमातरम् का गान गाते मधुर ध्वनि से मानो भारत की जैजैकार की पुकार का अनुहार सा सब लोग कर रहे हैं। नगर २ में क्लब कमेटी और सभायें स्थापित हैं जिनमें बहुधा यही बिचार छिड़ता है कि हमें आगे बढ़ने के लिये क्या करना उचित है जिससे हमारा चिरस्थायी अभ्युदय हो और जो उसमें विघ्न या रुकावट हो सो दूर किया जाय। हमारी तरक्की में बिघ्न डालने वाली अनेक कुरीतों में कोई इसी लिये कटिबद्ध हैं कि बाल्य बिवाह को हटाय अखण्ड ब्रह्मचर्य स्थापित हो। कोई निज भाषा की उन्नति देश की उन्नति का साधन समझ उसी की चेष्टा में लगे हैं। कोई स्त्रियों की दशा का सुधार और उन्हें सुशिक्षित बना देने को भलाई का द्वार मानते हैं। कोई सबों के सहभोजन के लिये ज़ोर मार रहे हैं। कोई नये विज्ञान और शिल्प को देश में फैलाने के यत्न में प्रवृत्त हैं इसीलिये प्रति वर्ष जपान तथा अमरिका आदि देशों में जाय कृत कार्य होने का उद्योग कर रहे हैं। ऐसे समय स्वदेशीय की चाह और विदेशीय से घृणा मन में पैदा हो जाना निश्चय उस दयालु दीनोद्धारक दीन वत्सल की प्रेरणा है। हमारे आर्तनाद और दीनाक्रन्दन अन्त को उसके बड़े दरबार में पहुंचे ही तो अब तक जो हमारी सुनाई वहां नहीं हुई यही अचरज था इसका कोई बड़ा कारण रहा होगा अस्तु॥

वधूस्तवराज।

हे ललना ललाम--हे कुलकामनियों की आदर्शस्वरूप - हे अनेक गुणगरिमाविशिष्ट—तुम अपने स्वाभाविक सहज गुण से चिराभ्यासी योगियों की सहिष्णुता को सहज ही में जीत लेती हो। हे वंशप्ररोह जननी यह लोक परलोक दोनों में सुख देने वाले शुद्ध सन्तान के पैदा होने की बीज भूमि तुम्ही हो "सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेहच शर्मणे" देवी

तुम्हारे संख्यातीत अनगिनत दिव्यगुणों को गिन चुकता कर देने की किसकी सामर्थ्य है। हे बड़े कुनबे वाले गृहस्थों के घर की दीपशिखा सी समुज्वल वेशधारिणी विविध वेशभूषाविहारिणी। बेटी के भाव में जब तक तुम अपने बाप के घर को सुशोभित करती रहती हो तब तक पिता के घर का तुम्हारा अखण्ड स्वर्गीय राज्य को भला किसकी सामर्थ्य कि खण्डित कर सके? भौजाइयों पर तुम्हारी सतत हुकूमत उद्धृत स्वच्छन्द बिहार और तुम्हारी अठखेलियों का निरूपण लेखिनी की शक्ति के बाहर है। पर ससुराल के लिये देहली से बाहर पांव रखते ही एकबारगी पतोहूपन संक्रामित हो न जानिये पहले की सब बातें किस कन्दरा में जा छिपती हैं औद्धत्य सहसा बिनीतभाव में परिणत हो जाता है स्वच्छन्दता भूत के आवेश सी उतर कौन जाने कहां गायब हो जाती है। देवी यदि तुम्हें लोकोत्तर सहिष्णुता "बरदाश्त" का बल या भरोसा न होता तो थोड़ी २ बात में खांव २ कर दौड़ने वाली सास तथा ननदों का हठ और ज़ोर जुल्म कैसे सहज में सहने के लायक होता-दुर्गा पाठ में लिखा है॥

"विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु"

जितनी विद्यायें सब तुम्हारे रूप हैं संसार में जितनी स्त्रियां वे भी सब तुम्हारी ही प्रतिकृति हैं-ग्रन्थकर्ता मार्कण्डेय ऋषि इतना हीं गोल मगोल कह चुप हो गये आगे साफ २ कहने की हिम्मत न कर सके। हम कहते हैं देवियों में भी कई तरह की हैं जिनमें एक महाकाली होती हैं। तो जितनी सौम्य और सद्गुण वाली हैं वे सब महालक्ष्मी और सरस्वती हो बहू के रूप में घर की लक्ष्मी बन आती हैं और घर को देव मन्दिर बना देती हैं। पर जो चण्डी कर्कशा नित्य कलहकारिणी फूहर मैली कुचैली हैं वह महाकाली के रूप से घर में प्रवेश कर घर को श्मसान तुल्य कर देती हैं-एक २ आदमी की ज़िन्दगी उभारू कर दी जाती है "जन्मनष्टंकुभार्या" तस्मात् हे चण्डी तुम अपना

चण्डरूप का संकोच कर सौम्य दृष्टि से हमें आप्यायित करती रहो तो इसी में हमारा कल्याण है। बहुधा जो गृहस्थ हैं जिनको अपने कुल की लाज निभाने का बड़ा ख्याल है वरन सदा इसी चिन्ता में व्यग्र रहते हैं कि चादरे के चार खूंट हैं न हो कि किसी खूंट में दाग लग जाय इसलिये उद्धत हो जाने से मुंह मोड़ सदा सब से नम्र रहते हैं। मानो शील और संकोच के बोझ से दबे जाते हों ऐसोंहीं के घर को देवी तुम बहू बन सुशोभित करती हो। जिनमें ये पूर्वोक्त भाव नहीं आये अपनी हर एक बातों के घमण्ड से तीनों लोक को तिनका तुल्य समझते हैं वहां उनके संहार के लिये तुम काली सी कराल काल रात्रि हो प्रवेश करती हो। तुम्हारे चण्ड रूप का प्रकाश वहां पहुंचते ही सब छिन्न भिन्न होने लगता है और जल्द उस घराने की इतिश्री हो जाती है। इस्से हे देवी यह शक्ति आप ही को प्राप्त है चाहे सोने के पांव से घर में प्रवेश करो चाहे लोहे के। आपका स्वर्णपद गृहस्थी में समस्त अभ्युदय दायक है भाग्यवानों के घर की लक्ष्मी बनने को आप सुवर्ण के पांव से प्रवेश करती हो दरिद्रों के यहां आप लक्ष्मी की बड़ी बहन बन कर आती हो। जहां आलसी निरुद्यमियों का दल मैले कुचैले भेख से पेट की अग्नि के मारे कांव २ मचाये हुये लड़ रहे हैं; जहां पुंवत प्रगल्भा कर्कशाओं का दल अष्ट प्रहर कलह और दांत किर्रने का पुरश्चरण कर रही हैं; वहां तुम पहुंच उन कराल चण्डियों की चण्डीश्वरी बन बड़ी शोभा पाती हो और तुम्हारे समुचित समागम से उस घर की बुराई के लिये सुख्याति में भी कुछ कसर बाकी नहीं रहती। देवी आज इस स्तव राज के द्वारा तुम्हारा गुण कीर्तन कर फल स्तुति में यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे पढ़ने वालों को अपने प्रचण्ड कराल भेष के दर्शन से बचाये रहो और जिनके यहां कोई ऐसी कराला हों उनको तो इस स्तोत्र का पाठ बहुत ही सामयिक है॥

———

हमारा सच्चा मित्र।

यदि हमसे कोई पूछै तुम्हारा सच्चा मित्र कौन है? तो हम यही उत्तर देंगे पुस्तक। लोग दिल्लगी उड़ावैंगे कि यह पागल हो गया है कभी निर्जीव पदार्थ भी किसी का मित्र हुआ है? मित्र वही हो सक्ता है जिस्के साथ हम चल फिर सकैं बोलैं चालैं उठैं बैठैं खांय पियैं इत्यादि ऐसाही है तो लकड़ी पत्थर भी आप का मित्र हो सक्ता है॥

नहीं नहीं मित्र कौन है सो मैं अच्छी तरह जानता हूं—मित्र वही है जो सगा भाई के समान हर वक्त हमारी सहायता करता रहे—जिस का साथ हम हर घंटे चाहते हैं-जो विपद संकट में हमारी रक्षा करे बुरा काम करने से बचावे और भलाई की ओर हमें झुकावै हमारे सुख दुख का साथी हो। इस तरह का हमारा एक मात्र मित्र पुस्तक ही है क्योंकि ऊपर कहे हुये मित्र के सब लक्षण इसमें हैं। अंगरेज़ी के कवि सौदे Southey ने कहा है My never failing friends are they; with whom I converse day by day. साथ देने में कभी चूकनेवाला न हो ऐसा मित्र वही है जिस्से समारे प्रति दिन के आलाप संलाप में कभी त्रुटि न हो--रसिक का प्रति दिन क्या प्रति क्षण पुस्तक के साथ संलाप रहता है--दिन और रात के बहुत से ऐसे घंटे हैं जिनमें Intimate गाढ़े से गाढ़े मित्र का भी साथ छूट जाता है पर पुस्तक का कभी नहीं। बल्कि सोते समय हम सो जाते हैं तैाभी यह खटिया पर पड़ी २ लोटती हुई दबी रह जाती है--हमारी करवटों में अस्त व्यस्त और जीर्ण शीर्ण हो जाती है यहां तक कि कभी २ पांव के तले तक पहुंच रैांदी जाती है तौभी कुछ बुरा न मान साथ नहीं छोड़ती—हमारा मित्र पुस्तक हमें पतित पावन अपना पवित्र चरित्र सुनाती है—उसी मित्र के द्वारा कभी २ हम जहाज़ में बैठ समुद्र यात्रा के चित्र देख उस्के सुख दुख का अनुभव करते हैं--कभी २ पहाड़ की चोटी पर बैठ प्रकृति की मनो-हारिणी शोभा का कौतुक देखते हैं—कभी साहित्य या विज्ञान वाटिका में

बिहार करते हैं कभी सुप्रसिद्ध वक्ताओं की सुमधुर वक्तृता सुन प्रसन्न होते हैं--और मित्रों की अपेक्षा इसकी मैत्री में एक विशेष गुण है कि राजा या रंक सब के साथ इसका मैत्री का एक सा बर्ताव है-कुछ दिन पूर्व लोगों को ऐसे मित्र बहुत ही कम मिलते थे और मिले भी तो बहुत परिश्रम तथा बड़ा खर्च करने पर। यह वर्तमान् समय की सभ्यता का प्रसाद् है कि ऐसे २ उत्तम मित्र हम सदैव सब ठौर और बहुत थोड़े खर्च में पा सक्ते हैं--ऐसे सच्चे मित्र पाकर यदि हम अपना कुछ उपकार साधन न कर सके तो हमारे सदृश अभागा कौन होगा--हिन्दुस्तान का क्षतिग्रस्त होना तथा इसके अधः पात के अनेक कारणों में ऐसे सच्चे मित्र का त्याग या उसका अनादर परंप्रधान कारण है-यूरोप अमरिका तथा जपान आदि उन्नति शील देशों की तरक्की के अनेक कारणों में ऐसे सच्चे मित्र की कदर एक कारण है—जहां पढ़ने पढ़ाने का शौक लोगों में इतना बढ़ा है कि कुली भी जब अपने कुलीगीरी के काम से फ़ुरसत पाता है ज़रूर कुछ न कुछ पढ़ता है यहां शिष्ट शिरोमणि भी पढ़ने की ओर रुचि नहीं रखते दरिद्र और पराधीनता उसी सच्चे मित्र के अनादर का फल हम भोग रहे हैं॥

लोचन प्रसाद् पाण्डेय।

——

सूदखोरी।

हिन्दुस्तान के डूबने के बहुत से कारणों में सूदखोरी भी एक है-व्याज खाने वाले निष्पुषार्थ और आलस्य के पुंज कदर्यता कड़ाई और निठुराई के वशमें होते हैं। इन्ही बातों का खयाल कर कदाचित् मनु महाराज ने "विष्ठावार्द्धुषिकस्यान्नम्" लिख दिया है। वार्द्धुषिक व्याज खाने वाले का अन्न विष्ठा है। "योयस्यान्नमश्नाति सश्नाति तस्य पातकम्" जो जिसका अन्न खाता है वह उसका मानो पातक खाता है। अर्थात् उसका सा शील स्वभाव आचार विचार आदि सब उसमें आजाता है वैसाही जैसा संक्रामक रोग एक का दूसरे में फैलता

है। और यह तो कहावत की भांत प्रचलित सा है कि व्याज खाना राड़ों का रोज़गार है जो किसी व्यवसाय में दाखिल नहीं है इसलिये कि सूदखोर को बुद्धि या श्रम को काम में लाना नहीं पड़ता। महम्मद ने जो अपने मुसलमानी धर्म में सूदखोरी को हराम लिख दिया है उसका शायद यही मतलब है कि सूदखोरी राइज और जां रक्खेंगे तो कुरान के मानने वाले कौमीयत से डिग जायंगे। मुसलमान जिन्हे हम कौम बनाना चाहते हैं व्याज खाते २ आलसी और निष्पुरुषार्थी हुये तो किस काम के। यही कारण है कि मुसलमानों में बीरोत्साह हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। खरोच भी मुसमान अधिक होते हैं सो भी इसी से कि ब्याजखोरी की आदत उनमें नहीं है। उदार भाव तो वाद्धुषिक में आवेही गा नहीं बरन कदर्यता अलबत्ता उसमें कबज़ा किये रहैगी। व्याज खाने की आदत उद्यम और व्यवसाय पर कुल्हाड़ा चला रही है कोई बड़ा काम आरंभ करने के पहले हमारे महाजन भाई ब्याज का परता पहिले फैला लेते हैं। जिस रोज़गार में आठ आना सैकड़े की मिती तरी वह बड़े फाइदे का व्यवसाय समझा जाता है उसे PAYING BUSINESS कहैंगे। यूरोप और अमरिका के लोग बिना किसी तरह की हिचक बेकलेजे लाखों और करोड़ों रुपये किसी बहुत बड़े धन्धे में लगा देते हैं ईश्वर उनके इस साहस पर रीझ एक का चार कभी को आठ और दस गुना लाभ उन्हें करा देता है। थोड़ेही दिनों के व्यवसाय में करोड़ों का धन पास हो जाना कुछ दुष्कर नहीं रहता। सूदखोर कौड़ी २ ब्याज की दांत से थांबता है येन केन पेट पाल लेने के सिवाय बहुत बड़ा धनी नहीं हो सकता न ऊंची २ उमङ्ग उसके जी में उठ सकती हैं। खिस्सत या कृपणता और कदर्यता का आगार बना रहता है और सांप सा बैठा हुआ धन ताका करता है। न खाता है न खरचता है व्याज के घाटे के पेच में पड़ा हुआ किसी ऊंचे काम या धन्धे में रुपया लगाने का साहस या हिम्मतही उसकी नहीं

होती। व्याज की लालच ने न जानिये कितने करोड़ रुपये हम लोगों के प्रोमैसरी नोट में लगे हुये हैं जिस से कितने अधिक लाभदायक बड़े २ काम हो सकते थे सो सब थोड़े व्याज के मुनाफे पर गवर्नमेंट के सिपुर्द है। गवर्नमेंट भी अपनी पालिसी से नहीं चूकती अब तक लोन पर लोन खोलती ही जाती है। पहले तो धन देश में रही न गया जो है भी वह नये २ लोन में खिचा जाता है। ईश्वर जो भारत का अभ्युदय चाहता हो तो चाहिये कि वह हमे सुमति दे कि हम व्याज खाने की निकृष्ट वृत्ति से घिन करें। स्वदेशी वस्तु के बर्ताव का आन्दोलन देश के एक छोर से दूसरे तक फैलता जाता है जापान और अमरिका की तरह देश की बनी चीज़ों के लिये ज़रूरत है कि बड़े २ कारखाने खोले जांय किन्तु देश में जितना चाहिये उतना धन न रहने से संभव नहीं कि हम कृतकार्य हों। प्रिय पाठक परमात्मा की सानुकूलता से वह दिन अब न रहा जब हिन्दुस्तान में उद्यम के अभाव से आप को व्याज के अल्प लाभ से सन्तोष कर लेना पड़ा था अब भारत के नवाभ्युत्थान सूर्य का उदय हुआ चाहता है। नवाभ्युत्थान वालार्क की किरणें जहां तहां छिटक रही हैं अब आप भी अग्रसर होने को आगे कदम बढ़ाइये और सूदखोरी की कदर्य वृत्ति से मुह मोड़ उद्यमशीलों के अगुआ बने॥

और प्रान्तों की आपेक्षा स्वदेशी का आन्दोलन बंगाल में बहुत अधिक है वहां के क्यपिटलिस्ट बड़ी पूंजी वाले धनियों को चाहिये कि १ करोड़ या ५० लाख की पूंजी इकट्ठी कर छोटी पूंजी वाले रोज़गारियों को जिनका रुपया प्रोमिसरी नोट के कम व्याज मे फसा हुआ है उस मे से अपना रुपया निकलवाय इस रुपये से सहायता दे उन्हें देशी कारखाने खोलने के लिये प्रोत्साहित करें और जो कदाचित् घाटा हो तो उसी बड़ी पूंजी से उनकी मदद की जाय तब वे इस आन्दोलन में अलबत्ता पूरी कामयाबी हासिल कर सकेंगे पर यह सब तभी

हो सकेगा जब रांडों की सी आदत सूदखोरी से मुह मोड़ उद्यम और उत्साह काम में लाया जाय ॥

भट्टि ।

सुनने में आता है कि किसी राजा ने एक पंडित से पूछा कि क्या तुम मेरे पुत्र को एक बर्ष के भीतर संस्कृत व्याकरण भली भांति सिखा सकते हो तो पंढित ने उत्तर में कहा हां । राजा इस उत्तर से अत्यन्त चकित हुये । पंडित से तो कहा कि पढ़ाओ पर स्वयं इस बात के लिये सयत्न हुआ कि पंडित की बात न रहने पावे । अतएव मंत्री की सम्मति से राजा ने किसी प्रकार पाठ के समय में गुरु और शिष्य के बीच से हो के किसी हाथी को चला दिया । पाठावस्था में गुरु शिष्य के बीच हाथी के चलने से व्याकरण शास्त्र का बर्ष भर के लिये अनध्याय होता है । जब पंडित ने देखा कि अब बर्ष भर में व्याकरण पढ़ाना असंभव है तब उनने व्याकरण शास्त्र बिना पढ़ाये भट्टि काव्य के ही द्वारा बर्ष भर में राज पुत्र को व्याकरण में निपुण कर दिया । राजा को हार माननी पड़ी । ये पंडित भट्टि ही थे । भट्टि काव्य की रचना कहीं २.पर बहुत सुन्दर है मुख्य करके द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में शरद् ऋतु का बर्णन ऐसा मनोरम है कि उसके द्वारा ग्रन्थकार की अद्भुत कविता शक्ति भली भांति जानी जाती है ॥

अनुमान होता है कि कवि का नाम 'भट्टि, ही था । भरत मल्लिक जिनने भट्टि काव्य की एक टीका रची है ग्रन्थकार का नाम भर्तृहरि बतलाते हैं । पर यदि उनका ऐसा कहना ठीक हो तो ये भट्टि काव्य के रचयिता भर्तृहरि बिक्रम के भाई से भिन्न होंगे । जयमङ्गल भी भट्टि काव्य के एक प्रसिद्ध टीकाकार हैं उनने कवि का नाम भट्टि ही बतलाया है । ग्रन्थ की समाप्ति में ग्रन्थकार अपना परिचय यों देते हैं

काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां
श्रीधर सूनु नरेन्द्र पालितायां।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य
क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम् ॥

अर्थात्

राजधानि वलभीपुर माहीं। राज करत श्रीधर सुत आहीं ॥
प्रजा हितोद्यत भूपति पायो। तिहि यश लगि यह काव्य बनायो ॥

जिससे अनुमान होता है कि ये कवि वलभीपुर के निवासी हैं। कहीं २ पर 'श्रीधर सूनु' के स्थान में श्रीधर सेन ऐसा पाठ मिलता है। वलभी के राजपूतों की वंशावली में धरसेन नाम के कई राजा हुए हैं जिनमें से यह निर्णय करना कठिन है कि ये कवि उनमें से किस के आश्रित थे। संभव है कि जैसे भीमसेन को लोग संक्षेप में भीम कह के पुकारते हैं वैसे ही धरसेन को इस श्लोक में केवल 'धर' नाम के पूर्व श्री लगा दिया हो और उसके बेटे को 'श्रीधरसूनू' कह दिया हो। जयमङ्गल ने जो राजा का नाम नरेन्द्र बतलाया है सो ठीक नहीं जंचता। यहां नरेन्द्र शब्द राजा का वाचक है नाम नहीं ॥

बाबू रमेशचन्द्र दत्त के अनुमान से वलभी के राजाओं का समय सन् ४७० ई० से ले के ६७० ई० पर्यन्त निश्चित होता है। यह वलभी गुजरात में है। यहां के राजा लोग अपने को सूर्यवंशी अर्थात् रामचन्द्र के पुत्र लव के बंश में उत्पन्न बतलाते थे। असंभव नहीं है कि अपने आश्रमदाता राजा के प्रसिद्ध पुरखे रामचन्द्र की कीर्त्ति फैलाने के लक्ष्य से कवि ने ग्रन्थ बनाया हो। यदि धर सेन वा उसके पुत्र के समय में कवि वलभी में थे तो उनका समय खीष्टीय सातवीं सदी के अनन्तर नहीं हो सकता और पूर्व में पांचवीं सदी के पिछले भाग तक पहुंच सकता है। निदान सन् ४६० ई० से ले के ६७० ई० तक के बीच किसी

समय में ये कवि रहे होंगे। श्रीधर सूनु शब्द के होने से कुछ लोगों ने इन्हे श्रीधर स्वामी श्रीमद्भागवत के टीकाकार का पुत्र अनुमान किया है और बंगला भक्तमाल में लिखा भी है कि जब गुरू के उपदेश से स्वामी जी को बैराग्य हुआ उसी समय उनकी पत्नी पुत्र प्रसव कर परलोक सिधारी थी। नव प्रसूत बालक को ईश्वर के भरोसे छोड़ स्वामी जी बन को चल दिये। पड़ोसियों ने अनाथ बच्चे का पालन पोषण किया जब वह बड़ा हुआ तो उसने भट्टि काव्य में रामचन्द्र जी का गुण गान किया पर इस कथानक की सत्यता में घोर सन्देह उपस्थित होता है॥

भट्टो जी दीक्षित।

प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ सिद्धान्त कौमुदी इन्ही महाशय ने बनाया है। इनके गुरू मरते समय बोले कि राम राम कहो तो इनने कहा कि बहुबचन में 'रामाः' ऐसा क्यों न कह दें जिस से बार बार शब्दोच्चारण से छुटकारा मिले। इस शुष्कबाद से गुरु ने अप्रसन्न हो उन्हें शाप दिया जा तू मरने पर पिशाच होगा और उस दशा से तेरी मुक्ति तभी होगी जब सिद्धान्त कौमुदी का प्रचार समुद्र तट तक जा पहुंचेगा। अब तो समुद्र तट की कौन कहे समुद्र पार भी नये २ देशों में सिद्धान्त कौमुदी का प्रचार हो गया। जिसने संस्कृत में सिद्धान्त कौमुदी न पढ़ी हो वह वैयाकरण होने का अभिमान बहुधा नहीं कर सकता। उसी एक ग्रन्थ के द्वारा भट्टोजी दीक्षित अत्यन्त प्रसिद्ध हैं॥

ये महाशय दाक्षिणात्य थे पर निवास स्थान इनका काशी था। इनके पौत्र हरि दीक्षित नागोजी भट्ट के गुरू थे नागोजी भट्ट का समय सत्रहवीं सदी ख्रीष्टीय में माना जाता है निदान वही समय श्री हरि दीक्षित का मान लिया जा सकता है। उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व यदि भट्टो जी दीक्षित को मान लें तो उनका समय ख्रीष्टीय सत्रहवीं सदी का पहिला भाग अनुमान किया जा सकता है॥

भर्तृहरि।

महाराज विक्रम के जेठे भाई प्रसिद्ध वैयाकरण और तीनों शतक के रचयिता भर्तृहरि को कौन न जानता होगा। यदि विक्रम का समय सन् ईस्वी के प्रारम्भ से ५७ वर्ष पूर्व माना जावे तो भर्तृहरि का भी वही समय निश्चित हो सकता है। परन्तु के० टी० टेलङ्ग का अनुमान है कि भर्तृहरि अवश्य कालिदास से पिछले हैं और जब तक पतञ्जलि का महाभाष्य चन्द्राचार्य आदि वैयाकरणों के द्वारा हिन्दुस्तान में भली भांति प्रचलित न हो चुका होगा तब तक भर्तृहरि नहीं हो सकते। अतएव उनका सिद्धान्त भर्तृहरि को लगभग सन् ७८ ई० का व्यक्ति बनाता है तथा विक्रम संवत् को शालिवाहन के शाका से मिला देता है। यद्यपि टेलङ्ग के मत में यह निर्विवाद सिद्धान्त निर्णीत किया गया पर इसमें अभी और भी कई एक सन्देह उपस्थित हो सकते हैं। भर्तृहरि का बनाया व्याकरण ग्रन्थ वाक्यप्रदीय है। भट्टिकाव्य इन्हीं भर्तृहरि का बनाया है ऐसा कहने में कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता प्रत्युत इसके विरुद्ध बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। नीति शृङ्गार और वैराग्य शतक तो भर्तृहरि ही का बनाया प्रसिद्ध है पर फिर भी सन्देह हो सकता है कि यह उनकी रचना है वा संग्रह है अथवा दोनों मिश्रित हैं। शतकों में के बहुत से श्लोक कालिदास और और २ कवियों के ग्रन्थों के पाये जाते हैं जिससे भर्तृहरि ने शतकों में भिन्न २ स्थानों से श्लोक संग्रह किये ऐसा अनुमान हो सकता है। भर्तृहरि स्वयं राजा थे और अपनी स्त्री के चरित्र पर सन्देह उत्पन्न होने से उन्हें वैराग्य हुआ ऐसा नीतिशतक के दूसरे श्लोक से द्योतित होता है यथा—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः।

असमत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तांच तं च मदनं च इमां च मां च ॥

अर्थात्

सोचूं जिसे नित मुझे वह नाहिं चाहै
सो चाह दूसरहिं दूसर चाह औरै ।
मो काज पै लहत तोवहु कोउ दूजी
धिक् ताहि वाहि मदनै इसको मुझे भी ॥

राज्य से विरक्त हो भर्तृहरि ने तपस्या की और लोग चुनार में उनकी गुफा बतलाते हैं। उनके छोटे भाई विक्रम को प्रजा पालन का भार सौंपा गया ॥

यदि ये विक्रम प्रसिद्ध प्रमरवंशी शकारि उज्जयिनी राजा हैं तो संभव है कि सन् ५४४ ई० के पूर्व छठवीं सदी के प्रारम्भ भाग में भर्तृ-हरि का समय माना जावे। सो जो कुछ हो इतना तो अवश्य ही होगा कि भर्तृहरि सन् ईस्वी से ५७ वर्ष के लगभग पूर्व वा छठवीं सदी से अधिक पिछले नहीं हो सकते। बीच में किसी समय भी रहे हों तो असम्भव नहीं है पर उसके पक्के प्रमाण मिलने चाहिये ॥

धीरेव धन्यं धनमुन्नतानाम्
विधैव चक्षुर्विजितेन्द्रियाणाम् ।
दयैव पुण्यं पुरुषोत्तमानाम्
आत्मैव तीर्थं शुचिमानसानाम् –क्षेमेन्द्र ॥

"ऊंची तबियत वालों का अकिल ही मुबारिका दौलत है"

जान पड़ता है कवि ने बड़े अनुभव के उपरान्त ऐसा लिखा है बहुधा देखने में आता है कि जो रुपयों के बटोरने में ऊंचे हैं वे अकिल के काम में नीचे होते हैं। यूरोप और अमरीका के उन्नतिशील देशों में

अकिल और रुपया दोनों एक साथ बढ़ता जाता है-पर हमारे देश में ऐसा नहीं है रुपयेवालों के ऐसे ऊट पटांग बेअकिली के काम देख गये हैं जिस्से यही निश्चय होता है कि लक्ष्मी और सरस्वती का परस्पर विरोध है-यही कारण है कि बुद्धि के बढ़ानेवाले बड़े २ काम इतने बहुतात के साथ हिन्दुस्तान में नहीं किये जाते जैसा और २ सभ्य देशों में किये गये हैं। मुल्की तरक्की के लिये हम लोग जो पछताते और अफसोस करते हैं उस्का कारण यही है कि यहां रुपयेवालों का धन ऊट पटांग कामों में इतना अधिक अपव्यय हो जाता है कि उनके उन कामों से अधिक रुपया उभड़ताही नहीं कि तरक्कीवाले कामों में खर्च करने को उनसे कहा जाय-इसी से कवि दुखी हो कहता है "धीरेवधन्यं धनमुन्नतानाम्"-दूसरे औरों को तरक्की करते देख मन में ऐसा ख्याल पैदा होना और फिर हिम्मत बांध उस ओर झुक पड़ना यह भी उसी से हो सक्ता है जिस्के पास बुद्धि की पूंजी है-धन की पूंजीवाले को नुकसान उठाने का अनेक आगा पीछा दामनगीर रहता है तब तक खुल के किसी काम में नहीं लगता जब तक सर्वथा लाभ की संभावना उसे नहीं हो जाती ॥

श्लोक में दूसरी बात है "विद्यैव चक्षुर्विजितेन्द्रियाणाम्" जो इन्द्रियों को अपने काबू में किये हैं उनको विद्याही नेत्र है-सच है हम इस चर्म चक्षु से ऊपरी बात भले ही देख लेते हैं किन्तु किसी वस्तु को भीतर से वेही टटोल सक्ते हैं जो पढ़े लिखे हैं—केवल पढ़ लेनेही मात्र से नहीं जब तक लिखने पढ़ने का परिणाम चरित्र पालन न हो जो सहज नहीं है जब तक मन इतना दृढ़ न हो कि वाहय प्रपंच में दौड़ने से रुका रहे—बड़े २ कुशाग्रबुद्धि सकल विद्या पारंगत विषया स्वाद लंपट हो कातिक के कुत्तों की तरह कुतियों के पीछे दौड़ते देखे गये हैं—इसी से कवि कहता है जो इन्द्रियों को बश में किये हैं उन्हीं को विद्या नेत्र का काम देती है विद्या और ज्ञान के द्वारा इन्द्रियों की चंचलता

से जो बुराइयां पैदा होती हैं उसे वे देख सक्ते हैं ॥

तीसरा चरण इस्का "दयैवपुण्य पुरुषोत्तमानाम्" दया करना ही श्रेष्ठ जनों के लिये पुण्य है-सच है पुरुषों में श्रेष्ठ वही कहा जा सक्ता है जिस्में दया है कट्टर कलेजे वाला बड़ा गुणी भी निठुर हुआ तो किस काम का उस्के गुण से किसी का कुछ उपकार न बनेगा इसलिये कि जितनी भलाई सब का अंकुर मन में तभी जमता है जब किसी हीन दीन दुखी को देख जी पिघल उठै-चित्त की उसी दशा या वृत्ति को दया कहैंगे। उदारता के ऊंचे शिखर पर चढ़ने को दया पहली सीढ़ी है। सूम संकीर्ण हृदय वाले को दया कहां? कुटिलाई एच पेंच जिसे अनार्जव कहैंगे अलबत्ता वहां घर किये रहते हैं तस्मात् यही सिद्ध होता है कि जो पुरुषोत्तम हैं उन्ही में दया रहती है और दया से मनुष्य पुरुषोत्तम कहा जा सक्ता है ॥

अन्त में कवि का कथन है "आत्मैव तीर्थं शुचिमानसानाम्"-जिन का मन पवित्र है उन्हें अपने को जानना यही बड़ा तीर्थ है कहा भी है "शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्"-जिनका मन पवित्र है उन्हें तीर्थ यात्रा से क्या "मन चंगा तो कठौती में गंगा" किन्तु हमारा मन पवित्र हो यह कितनी टेढ़ी खीर है संसार में सबी ऐसे मन वाले कहां हैं? जो हैं उनके लिये महत्व शब्द का प्रयोग अर्थात् उन्हें महात्मा कहना मानो उनके लिये Reserved. उपयुक्त है-मन के सम्बन्ध में हम बहुत बार बहुत सा लिख चुके हैं गाई गीत का फिर २ गाना क्या—इस्से इस लेख को यहीं पूरा करते हैं और अपने पढ़नेवालों को चिताते हैं कि आप लोग इस्का थोड़ा भी अभ्यास डालते रहैं तो यहां तथा वहां दोनों में सर्वथा कल्याण है "परत्रेहवेचशर्मणे" शिव संकल्प सूक्त का पाठ और उस्का मनन मन की पवित्रता का बड़ा सहकारी है और इस्के अनेक साधनों में एक वह भी है ॥

——

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रम्हापि तं नर नरञ्जयति ॥ ७३ ॥

जो बिलकुल मूर्ख है उसे समझाना सहज है विशेषज्ञ को समझाना उससे भी अधिक सहज है किन्तु जो अधकचड हैं उन्हे ब्रह्मापि राह पर नहीं ला सक्के ॥

अज्ञस्तावदहं नमन्दधिषणः कर्तुं मनोहारिणीश्चाटूक्तीः
प्रभवामि यामि भवतो याभिः कृपापात्रताम् ।
आर्तनाशरणेन किन्तु कृपणेनाक्रन्दितं कर्णयोः
कृत्वा सत्वरमेहि देहि चरणं मूर्धन्यधन्यस्य मेजग ॥७४॥

पहले तो हम अज्ञ हैं बुद्धि की कमी से जैसी चाहिये वैसी स्तुति या खुशामद आप की नहीं कर सक्के जिस्के द्वारा मैं आप का कृपापात्र बनूं=आर्त हूं कहीं मुझे ठिकाना नहीं है-कृपण हूं मेरा दुख रोना अपने कानों में कर जल्द मुझे अपना चरण दीजिये कि मैं उसे अपने सिर की शोभा कर अपने को धन्य मानूं-सेव्य के प्रति सेवक की दीनता इससे बढ़कर और क्या हो सक्ती है ॥

अज्ञातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा
ये काव्यमार्गे दधतेभिमानम् ।
ते गारुडीयाननधीत्य मन्त्रा ।
न्हालाहलास्वादनमारभन्ते ॥ ७५ ॥

पण्डिताई के रहस्य की क्या मुद्रा है सो जो नहीं जानता और काव्यज्ञ बनने का अभिमान करता है वह मानो सांप के विष उतारने का गारुडी मंत्र न जान विष पान करता है ॥

अज्ञाताः पुरुषा यस्य प्रविशन्ति महीपतेः ।
दुर्गं तस्य न सन्देहः प्रविशन्ति द्रुतं द्विषः ॥७६॥

जिस राजा के किला या दुर्गभूमि में अजनबी प्रवेश पाता है तो निःसन्देह शत्रु जल्द वहां घुस जा सक्ता है ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥ ७७ ॥

जान के या बिना जाने निन्दित काम बन पड़े तो उससे छुटकारा पाने को फिर वैसा काम न करे ॥

अज्ञानान्धमबान्धवं कबलितं रक्षोभिरक्षाभिधैः ।
क्षिप्तं मोहमहान्धकूपकुहरे दुर्बुद्धिरभ्यन्तरैः ॥
क्रन्दन्तं शरणागतं गतधृतं सर्वापदामास्पदं ।
मा मां मुञ्च महेशपेशलदृशा सत्रा समाश्वासय ॥७८॥

अज्ञान से अन्धा जिस्का हाथ पकड़ने वाला कोई बान्धव नहीं सब इन्द्रियां अपनी २ ओर से राक्षस सी हो जिसे अलग हो निगले लेती हैं दुर्बुद्धि ने मोह की महाअन्धी कुआ में जुदा ही फेक रक्खा है-चिल्लाता हूं शरण में आया हूं अधैर्य हूं डरा हुआ हूं ऐसे मुझ को हे महेश अपनी कृपा दृष्टि से अपनाय आश्वसन दीजिये-सेव्य के प्रति सेवक को कहां तक निरभिमान हो विनीत होना चाहिये उसका ओर छोर इसमें दिखाया है ॥

अज्ञानोपहतो बाल्ये यौवने मदनाहतः ।
शेषे कलत्रचिन्तार्तः किं करोतु कदा जनः ॥ ७९ ॥

बालक रहे तब अज्ञान रहे जवान होतेही भोग विलास में लगे उपरान्त जो समय बचा सो स्त्री पुत्र कुटुम्ब की चिन्ता में गया तब

कहिये लोग कब क्या करैं – देश की इस गिरी दशा के गृहस्थ का अच्छा चित्र इसमें उतारा गया है ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायनः ॥८०॥

निरा मूर्ख से वह अच्छा जिस्के पास बहुत से ग्रन्थों का सग्रह है उस्से भी वह अच्छा जो उन ग्रन्थों को पढ़े है- पढ़े हुये से ज्ञानी भला-- ज्ञानी से भी वह जिस्का ज्ञान केवल कहने ही को नहीं है बरन उस्के अनुसार चलता है ॥

अज्ञो न वितरत्यर्थान् पुनर्दारिद्र्यशंकया ।
प्राज्ञो पि वितरत्यर्थान्पुनर्दारिद्य शंकया ॥ ८१ ॥

अज्ञ यह समझ अपना धन दान नहीं करता कि मैं दे डलूंगा तो दरिद्र हो जाऊँगा--प्राज्ञ यही समझ दान करता है कि न दूंगा तो दूसरे जन्म में फिर निर्द्धनी जन्मूंगा ॥

अज्ञो पि तज्ज्ञतामेति शनैः शैलो पि चूर्ण्यते ।
घुणोप्यत्ति महावृक्षं पश्याभ्यासविजृम्भितम् ॥ ८२ ॥

अभ्यास से मूर्ख विद्वान् हो जाता है--धीरे २ पहाड़ भी चूर हो सक्ता है--घुन बड़े वृक्ष को घुन डालता है ॥

अज्ञो यो व्ययशीलश्च अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वभक्षी च नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ ८३ ॥

जो मूर्ख होकर खर्राच हो; बेवारिस का हो सब से लड़ा करे; रोगी हो सब कुछ खाया करे; ऐसा मनुष्य जल्द नाश को प्राप्त होता है ॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य च संचयम् ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥ ८४ ॥

आंजन रोज़ लगाते रहो तो एक दिन बिलकुल नहीं रह जाता वल्मीक थोड़ा २ एकट्ठा हो छोटा टीला सा हो जाता है--इसे देख दिन को व्यर्थ न खोना चाहिये प्रति दिन कुछ देता रहे या कुछ पढ़ना आदि भला काम करता रहे ॥

अञ्जलिरकारि लोकैर्ग्लानिमनाप्तैव रञ्जिता जगती।
संध्याया इव वसतिः स्वल्पापि सखे सुखायैव-गोव ॥८५॥

सब का पूज्य होता हुआ किसी को कोई ग्लानि बिना पहुंचाये प्रत्युत जगत् भर के लोगों को प्रसन्न करता हुआ सन्ध्या के समान कहीं पर थोड़ा भी बास परिणाम में सुख के लिये है--सन्ध्या बहुत थोड़े समय तक रहती है सब लोग उस समय अपने २ धर्म के अनुसार ईश्वर की पूजा बन्दना करते हैं सूर्यास्त होने से जगत् भर में ललाई छा जाती है--रञ्जित में श्लेष है जिस्के अर्थ हैं रंगना और प्रसन्न करना ॥

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥ ८६ ॥

अंजुली में फूल रक्खो तो दहिना बांया दोनों हाथों को सुगन्धित कर देता है--सुमनस फूल और अच्छे मन वाले सज्जनों का प्रेम वाम अपने प्रतिकूल और दक्षिण अपने अनुकूल दोनों पर एक सा रहता है॥

अणुनापिप्रविश्यारिं छिद्रेण वलवत्तरम् ।
निःशेषं मज्जयेद्राष्ट्रं पानपात्रमिवोदकम् ॥८७॥

अपने से अधिक बलवान् शत्रु में थोड़ा भी कोई छिद्र पाय भीतर घुस उस्के राज्य को डुबोने में कुछ बाकी न छोड़ रक्खे; वैसाही जैसा नौका में एक छोटा सा भी छिद्र पाय जल भीतर उस्के प्रवेश कर नौका को डुबा देता है ॥

REGISTERED No. A—308.

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहिं टरै ॥
सूझै विवेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २८ सं० १	प्रयाग	जनवरी सन् १९०६ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) —०*०— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

—:००:—

हिन्दीप्रदीप

जि० २८ } प्रयाग { जनवरी
सं० १ } { सन् १९०६ ई०

धर्म समाज का एक अङ्ग है।

आज हम अपना नया वर्ष धर्म के विचार और निर्णय से आरम्भ करते हैं-बुढ़ाई में अंग प्रत्यंग की शक्तियों के घट जाने पर लोगों का धर्म और परलोक की ओर बहुधा बहुत ख्याल दौड़ता है-जब तक हट्टे कट्टे रहे ऊंचे से ऊंचे हौसिले और उमंग के वेलून पर सवार जोश खरोश के आसमान में झोंका खाते उड़ा किये-दिमाग में यही समाया हुआ था कि मुशकिल से मुशकिल आसान है-क्या कोई ऐसे भी कठिन काम हैं जो यत्न साध्य न हों-कहो एक ही बार के पादप्रहार से पाताल का पानी काढ़ लें; धस कर अथाह समुद्र की थाह लावें; पर्वत

राज हिमालय को चूर २ बुकनी सा बना दें; सूर्यमण्डल की कई करोड़ और कई मिलियन मील की दूरी पर पल भर में पखेरू सा हो पहुंच जांय; "किंदूरंव्यवसायिनाम्"-किन्तु ५० के ऊपर नांघते ही नस २ ढीली पड़ने लगी; पहले का सब जोश खरोश विदा हो न जानिये कहां जा छिपा; धीरे २ शान्ति के सोपान पर पांव रखने लगे "धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते"—अब धर्म और परलोक की ओर ध्यान जमने लगा—पर चिरकाल के अभ्यास से बासना तो मन में कुछ और ही तरह की समाई है निरा परकाल का साधन ऐसे धर्म को धर्म मानना पसन्द न आया उसके साथ यह एक पख लगी रहनी चाहिये कि धर्म समाज का एक अंग है जिस्के आचरण से समाज का कुछ सम्बन्ध न हुआ वह रूखा धर्म किस काम का वरन वह धर्म ही न कहा जायगा—और वह जिस्के अनुसार चलने से समाज जर्जरित छिन्न भिन्न और क्षतिग्रस्त होती जाती है उसे तो धर्म कहेंहींगे नही वरन वह प्रत्यक्ष में महाअधर्म पाप और अनिष्ट है-प्रत्यक्ष इसे इसलिये कहते हैं कि बहुत से धर्म या अधर्म ऐसे हैं जिनका परिणाम स्वर्ग या नरक परोक्ष है-इस जीव लोक संसार से सिधार जाने पर उस्का फल हमें मिलता है किन्तु अधर्म के रूप में बहुतेरे धर्म का फल तो "इस हाथ दे उस हाथ ले" की भांति सद्यः और तत्काल मिल रहा है-जैसा आठ नौ या दस वर्ष की कन्या का बिवाह खान पान में पराकाष्ठा की छिलावट कुपात्र में दान की श्रद्धा आदि-कन्या ८ वर्ष की हो गई ऐसा न हो कि रजोदर्शन हो पड़े तो सात पुरखे नरक में जा गिरैं उधर कुलीनता का ख्याल सोंटा लिये पीछा कर रहा है-बाप मा जेठे भाई चाचा ताऊ सब के सब व्यग्र हैं खाई रोटी नहीं पचती अपनी ही जाति या फिरके में हाड़ मांस का पुतला भी कोई मिल जाय तो लड़की का हाथ पीला कर कुअरगर किसी तरह उतार सुचित्त हों धर्म जो जी छोड़ भागा जा रहा है उसे किसी तरह क़ैद कर लें-धर्मशास्त्रों में जो २ बातें उप-

युक्त बर के खोज करने की लिखी हैं जैसा स्नातक हो मृदु शान्त दान्त युवा बलवीर्य्य संपन्न पूर्ण विद्वान् आदि एक भी काम में न लाई गईं देव कन्या सदृश रूपवती अनेक गुणों की खान वालिका एक ऐसे निर्गुणी उजड्ड मूर्ख महाराक्षस को दैदी गई कि यावज्जीव उस बेचारी को सुख सपने के से ख्याल हो गये—आजन्म वे दोनों दुखी दंपति UNHAPPY PHIR रहे—जिन्हें कुल पुत्र होना चाहिये था वे आवारों के सिरताज हुये—अस्तु उन दोनों का दाम्पत्य भाव तो बिगड़ा ही आगे को कोई भलाई की सूरत पैदा होती सो भी नहीं—उनसे औलाद जो पैदा हुई वह सब भांति निःसत्व और वही क्रम उसका भी रहा—जहां समाज की समाज इस ढंग की है उस देश की अधोगति DOOMED दैवोपहत है—कहिये कैसी अच्छी धर्म की रक्षा हुई ॥

आगे चलिये विद्या और चरित्र दो कुलीनता की कसौटी हैं यहां दोनों की कहीं चर्चा भी नहीं हम कैसेही सच्चरित्र और प्रज्ञावान् हैं किन्तु पंक्ति में हमारा सहभोजन नहीं है कदाचित् हो जाय तो डर है नरक में ढकेले जांयगे-और आगे बढ़ने के पहिले हम अपने पढ़नेवालों को सूचित कर दिया चाहते हैं कि सहभोजन से हमारा प्रयोजन सर्व भक्षी हुताशः बन जाने से नहीं है न यही कि "सबै भूमि गोपाल की यामें अटक रहा--जाके मन में अटक है सोई अटक रहा"—वरन ईर्षा या कोई पुराना बैर को मूल में रख जो लोग अपनी ही बिरादरी या जाति वालों के साथ बैठ सहभोजन में धर्म की हानि मानते हैं उनके प्रति हमारा यह उद्देश्य है--अपनी ही जाति वालों के साथ सहभोजन को हम यहां तक पुष्ट करते हैं और धर्म शास्त्र द्वारा सिद्ध कर दे सक्ते हैं कि जाति का हिन्दू शूद्र भी कहार अहीर इत्यादि के हाथ का बनाया या छुआ खा लेने में किसी तरह धर्म की हानि नहीं है पर हां उच्छिष्ट या जूठा न हो--इस समय विलाइत अमेरिका जापान जाने का प्रश्न सब ओर गूंज रहा है हमारे नवयुवक फड़क रहे हैं कि कोई

बहाना समाज से विदेशों में जाने का उन्हें मिल जाय और वे अपने मन की कर गुज़रें किन्तु याद रहै आत्मत्याग SELF SACRIFICE को आगे रख शुद्ध देश सेवा के प्रयोजन से विदेशों में जाय और शूद्र के हाथ का पक्का या कच्चा भोजन करता रहे पीछे यहां आय प्रायश्चित्त कर फिर उस आचरण को छोड़ दे तो किसी तरह उसके धर्म में हानि न कही जायगी--सो तो नहीं वरन केवल ६ महीने विलाइत में रहे और पल्ले दरजे के आज़ाद बन घोर पियक्कड़ होने का अभ्यास वहां डालते रहे चलते समय एक मेम से गंठबन्धन कर यहां आय साहब बन बैठे--छोटी हाज़िरी और बड़ी हाज़िरी में कांटा चम्मच और अण्डों के बिना कौर नहीं उठाते हम लोगों को असभ्य अर्द्धशिक्षित कहने लगते हैं अपने साहबपन के जोश में हम लोगों से घिनाने लगे ऐसे साहब बहादुर का मुंह फूंक हम उन्हें काली के खप्पर में न झोंक दें॥

याद रहे ऐसे सहभोजन के हम पोषक नहीं हैं किन्तु आठ कनौजिया नौ चूल्हा अलबत्ता चाहते हैं कि न रहै॥

अब दान का प्रकरण लें तो हमारे धर्मशील दानी असंख्य धन प्रति वर्ष और प्रति मास दान करते हैं पर वह दान किन्हें दिया जाता है जिन का एक पैसा कभी किसी भले काम में नहीं उठता वरन ऐसे २ उन्माद और अत्याचार के काम उनसे बन पड़ते हैं जिन्हें देख यही मन में आता है कि अवश्यमेव हम पर कोई ईश्वरीय कोप है नहीं तो कोढ़ के रूप ऐसे लोग हमारी समाज में क्यों पैदा होते--तो निश्चय हुआ कि उन २ बुराइयों के कराने वाले वेही दानी हैं जो उन्हें दान देते हैं धर्म बुद्धि से तो दान देते हैं पर परिणाम उसका महा अधर्म होता है--तो यह सिद्ध हुआ कि धर्म वही जो समाज के लिये हित हो या जिसके अनुष्ठान अथवा जिसके अनुसार चलने से समाज सुधरती हो समाज के लोगों का कल्याण हो--किन्तु अन्धी समाज में गतानुगतिक के क्रम पर चलना ही धर्म है–विदेशी चीनी के साथ मनो

हाड़ खा गये विदेश की बनी बस्तु प्रतिक्षण काम में लाते हैं हमारे धर्मधुरन्धरों का कभी इसपर ध्यान न गया कि देश का धन विलाइत में ढोया चला जा रहा है देश दरिद्र होता जाता है कितना भारी पाप हम कर रहे हैं--इस पाप से बचैं पर पोथियों में नहीं लिख दिया गया किसी का ध्यान इस पर नहीं आता कि यह हम अधर्म कर रहे हैं-- "धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः" इसका यही तात्पर्य है कि हम अपनी विचार दृष्टि को काम में लाय सोचैं कि देश की बनी बस्तु को न काम में ला कितना अधर्म हम कर रहे हैं--सब से बड़ा धर्म्म देश में कौमीयत पैदा कर देना है जिस काम के करने से "नेशनालिटी" हमारे में आवे हमको अपने स्वत्व रक्षा का ज्ञान हो वही मुख्य धर्म है सो नहीं है इसकी बड़ी त्रुटि हमारे में है ॥

युवराज स्वागत ।

स्वागत प्रमुदित चित्त लखहु यह सुन्दर जोरी ।
चिरजीवहु प्रिय अहो वर्ष बहु लाख करोरी ॥
धन्य हमारो भाग धन्य तुव दर्शन पाये ।
हर्षित कहि यहि भांत प्रजागन तुव ढिग धाये ॥ १ ॥
किन्तु कष्ट युवरानिहि हित कछु भेट न पायो ।
युवराजहिं सन्तोष काज तिनपै न लखायो ॥
तबहि संकुचि इमि करत सोक दुख गिरा उचारी ।
फटी जात छाती भारत तुव दशा निहारी ॥ २ ॥
हाय कहां तव धन वैभव विद्या गुनखानी ।
विजय बैजयन्ती जासु रही चहुं दिशि फहरानी ॥
सोइ भारत जहां आज रही कौड़िहु नहिं कानी ।
कासों कहैं पुकारि सुनत आरत यह बानी ॥ ३ ॥

कहां रतन मनिखान रहे जो इतै न घेरे ।
बचे न एकौ कहूं विदित जो बीरबांकुरे ॥
चांदी सोनो सबहि उलटि कांचहि पलटायो ।
हाय महादुर्भाग्य अबै भारत को आयो ॥ ४ ॥
अधिक कहैं अब कहा बच्यो नाहीं कछु बुधिबल ।
जब भारत कहं मिलति नांहि मुट्ठी इक चावल ॥
पेट भरन के काज करत हैं कोटिन छल बल ।
ताहू पै नहिं चलत रहत हैं नित चित चंचल ॥ ५ ॥
चार बरन को देश अहै यह जग विख्याती ।
ब्राह्मन छत्री वैश्य शूद्र यह चारो जाती ॥
तिनमें एकौ रही नाहिं निज निज करतूती ।
डूबो आरज झुंड सुनत यह सालत छाती ॥ ६ ॥
ब्राह्मन गन निज पंथ छांड़ि दूसर अनुसरहीं ।
वेद न पढ़हिं पढ़ावहिं निज मन मारग धरहीं ॥
भये अहंकारी क्रोधी अरु वेद विरोधी ।
रह्यो न तिन महं सत्व कछुक अति भये अबोधी ॥ ७ ॥
बल विद्या नसि गई पराक्रम तनिक न बांचो ।
ब्राह्मण नाम भरत माता कहं डूबत सांचो ॥
छत्रिनहूं महं नाहिं कोऊ जो तुव ढिग आवै ।
अर्जुन भीषम भीम तुल्य रण विद्या दिखरावै ॥ ८ ॥
वीर्यहीन सब भये दुराचारी अरु लंपट ।
करैं न रक्षा धर्म प्रजा बहु पावत संकट ॥
वैश्यगनन हू लोभ ग्रस्त इक पाइहु नहिं देहीं ।
कल बल छल करि सदा अन्य धनहूं लैलेहीं ॥ ९ ॥
कहुं जो खेती करत हाय बरसत नहिं पानी ।
सकत बीजहू फिरन नाहिं होवत अति हानी ॥

शूद्रन की का दशा भये जब सबै भिखारी।
भिक्षाहू नहिं मिलत हाय दुख पावत भारी॥ १० ॥
भये अनेकन चोर शोर जे घोर मचावहिं।
महाराज युबराज आज का तुव दिखरावहिं॥
कलुक न यद्यपि रह्यो पास हे हे सुखरासी।
राज भक्ति की भेंट देत तुव भारतबासी॥ ११॥
प्रमुदित देत असीस मोद युत कहि इमिबानी।
चिरजीवहु युबराज हमारी प्रिय युबरानी॥
बिनय यही जगदीश ईश जग आरत त्राता।
जोरी रहै अनन्त काललौं बनी बिधाता॥ १२॥

लोचन प्रसाद पाण्डेय,

रायपूर।

हमारी झिनगही खाट के मोटेमल खटमल की रिपोर्ट

पाठक! यह तो कदाचित् आप जानते होंगे कि कभी २ गुदड़ी में भी लाल मिल जाते हैं–आज कल जाड़े की सनसनाती रात में सी सी करते हुये जहां लिहाफ के भीतर धंसने का समय मिला तो आप अनुभव कर सक्ते हैं कि उस सुख के आगे ब्रह्मानन्द क्या बस्तु है? ऐसे समय चिथड़ गुद्दड़ से भरी लिहाफ के भीतर मस्त पड़े रहो और उस समय आप का कोई कठिन से कठिन भी काम आपड़े तो कदाचित् ही आप इच्छा पूर्वक उठ सकेंगे--गहरी नींद में पड़े हुये हैं और जो कहीं पेशाब की हाजत मालूम पड़ी तो उस समय उठना मानो लङ्का की मुहिम फतह करना है--ऐसे समय कहीं से खटमल जी आप के बगलगीर हो तुम से बात चीत करने को सतावें तो तुम्हें क्या न अखरैगा–पाठक यही हाल मेरा हुआ–झिनगों से मिढ़ी खाट में फटी सी रज़ाई के भीतर पड़ा हुआ ब्रह्मानन्द का सहोदर गाढ़ी नींद के सुख का अनुभव कर रहा था कि पीठ के बगल में एकबारगी जलन

होने लगी--नींद उचट गई और खुजलाहट शुरू हुई--थोड़ी देर में खुजली बन्द हो गई फिर नींद लेने लगे तो पैर में जलन शुरू हुई तबियत बड़ी झुंझलाई दिया लेकर देखा तो एक मोटेमल से खटमल बहादुर नज़र पड़े--मेरे बदन का लहू चूस बतौड़ी सा फूल उठे थे--मैंने उन्हें चुटकियों से थांबना चाहा तो छिटक कर दूर हुये--खैर ज्यों त्यों मैंने उन्हें गिरफतार किया तब वे अजीब स्वर से नाक के बल बोले--मुझे और भी अचरज हुआ कि यह कैसा यह तो हम लोगों की सी बोली बोलता है--पूछा भाई तुम कौन हो कहां से आ रहे हो?

तब आदमी का चोला धर उसने अपना हाल यों कह सुनाया--मैं कलकत्ते का एक माड़वारी हूं विलाइती कपड़ों को बेंच मैंने अज़हद्द मुनाफा कमाया इसी पाप से खटमल कर दिया गया--जब मैंने बहुत सी प्रार्थना किया और शपथ किया कि आगे से ऐसा न करूंगा तब मुझसे कहा गया कि तुम्हें अपनी जाति का स्मरण रहेगा और जब तुम्हारे सम्बन्ध में हिन्दीप्रदीप में कुछ लिखा जायगा तब तुम इस खटमल की योनि से उद्धार पाओगे सो आपने बड़ी कृपा की मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूं--आपने पूंछा कहां से आ रहे हो--सो मैं इस समय बड़ी २ दूर शैर करने के बाद पहले समालोचक की आलमारी में पहुंचा फिर प्रयाग के राघवेन्द्र के बस्ते में थोड़ी देर ठहर वहां से रेंगता हुआ आप के शरण में आया हूं ॥

मैंने उससे फिर पूंछा जहां २ गये वहां २ आपने क्या देखा और क्या पाया?

वह बोला समालोचक के आलमारी में मुझे बहुत सी अनोखी चीज़ें देख पड़ीं पर दो बात सब से अधिक थी एक तो यह कि आलमारी भर में यत्र तत्र सर्वत्र की भरमार थी दूसरे भट्ट के लेख में भट्टपन की खोज--ऐसाही राघवेन्द्र के बस्ते में भी बहुत से अद्भुत पदार्थ देखे गये जिनमें सब से अधिक यह था कि उनके कपोल कल्पित धर्म कर्म के सिद्धान्तों का विरोध जिस्में हो वह चाहो अथाह गुणों की गरिमा

से भरा पुरा हो पर उनके विरुद्ध हुआ तो वह किसी काम का नहीं इस तरह के उनके सिद्धान्त की कई एक बातें हैं जिन में दत्त कृत इतिहास भी है। कुछ और भी कहा चाहता था कि चार जन जिनकी भव्य मूर्ति और दीप्यमान् आकार से बोध होता था कि ये कोई देव योनि हैं आ उपस्थित हुये और बोले। "तुम ने अपने पापों से छुटकारा पाया एडिटर महाशय को प्रणाम करो यह विमान तैयार है सिधारो"— उन चारों की आज्ञा पाय प्रणाम कर यह चंपत हुआ॥

M. P. BHATTA

बन्दे मातरम् का पद्यात्मक छाया अनुवाद।

बन्दौं मात तुम्हैं।

स्वच्छ मधुर जल भरे जलाशय, हरियाली लह लहात।
चांद उजास छिटिक चहुं ओरा, कुसुमित कानन अधिक सोहात॥

बन्दौं मात तुम्हैं।

मलयज रज मकरन्द बहाये, उपबन वीथिन बहत बयार।
सुखदाता वरदाता अम्बे, करण रसायन शबद तुम्हार॥

बन्दौं मात तुम्हैं।

तीस करोर मनुज धुनि कलकल, दुखित दशा महँ तिनहि निहार।
गहि कर बाल दुहू कर माता, करन चहो तिन कर उद्धार॥

बन्दौं मात तुम्हैं।

रिपु दल घालक तव विशाल भुज, कहत तोहि कत सब जग अबला।
संपद सुख जब तुव अधीन तब, क्यों न कहैं तुहि प्रबला॥

बन्दौं मात तुम्हैं।

निगम अगम विद्या सब हमरी, आरज धरम हमारो।
विभव वित्त धन धान्य सबहि महँ, निज महिमा विस्तारो॥

बन्दौं मात तुम्हैं।

देहहि प्रान, हृदय महँ भक्ती, बाहु दुहुन महँ शक्ती ।
सब मे व्याप रही हौ जननी, अद्‌भुत तुव करतूती ॥
बन्दौं मात तुम्हैं ।
दुर्गा सब दुर्गति की हरनी, दशभुज आयुध धरनी ।
घर घर प्रतिमा लसत तुह्मारी, तब क्यों न होहु मन हरनी ॥
बन्दौं मात तुम्हैं ।
कमला कमल बिहारिनि माता, बिमल अतुल तुव भासा ।
सुस्मित गात सरल चित ह्वैके, करहु कृपा निज दासा ॥
बन्दौं मात तुम्हैं ।
सुफल मनोरथ ते जन होवहिं, जे बिनवैं तुहि धरनी ।
पोषन भरन सबहिं तव करगत, किमि चुकवौं तुव करनी ॥
बन्दौं मात तुम्हैं ।

—:o:—

चीनी ।

अंगरेज़ी में चीनी को शुगर कहते हैं जो शर्करा से निकला है शर्करा से फारसी शब्द शक्कर हुआ शक्कर से शुगर बना । रसायन विद्या जानने वाले इसे कारवन हैड्रोजिन और आक्सोजिन का मेल बतलाते हैं । ये तीनो रसायनिक पदार्थ स्वाद में मधुर और जल में पिघल जाने वाले पदार्थ हैं । चीनी बहुधा बनस्पतियोंही में पाई जाती है और ऊख तथा Beet root (चोकन्दर) से जो चीनी निकलती है आदमियों के खान पान में वही लाई जाती है । हिन्दुस्तान में चीनी बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है बल्कि इसकी उत्पत्ति यहीं से हुई है । चीन वालों ने चीनी का उपयोग पहले पहल यहीं से सीखा है । इसाइयों की धर्म पुस्तक के उस भाग में जिसे Old Testament (पुरानी इंजील) कहते हैं उसमें मिठाई के बारे में Calamus (केलेमस) लिखा है शायद उसका इशारा इसी चीनी ही से है । यूनान के प्रसिद्ध इतिहास

लेखक और दार्शनिक हिराडटस और प्लइनी लिखते हैं कि सरकिंडे से एक प्रकार का शहद् निकाला जाता है जो रंग का सुफैद् और गोंद् सा होता है। ऐसा जाना जाता है कि इटली देश के प्राचीन नगर वीनिस में ९९० ईसवी में चीनी वहां अन्य देशों सि आई। बारहवीं शताब्दी में यूरोप के उत्तरीय भागों में चीनी सिसिली और ईजिप्ट के देशों से आती थी किन्तु बहुत थोड़ी मात्रा में। स्पेन के मुसल्मान मुअर्स लोग ऊख ईजिप्ट से स्पेन में लाये और स्पेन वालों ने चीनी को काम में लाना उन्ही मुअर्स लोगों से सीखा। स्पेन वालों ने ऊख का प्रचार पन्द्रहवीं शताब्दी में केनरी के टापुओं में किया और पोर्चुगुल वालों ने मदीरा में ये दोनो टापू अमरिका के समीप हैं। इन टापुओं से चीनी का प्रचार अमरिका के ब्रेज़िल और वेस्टइंडीज़ आदि कई देशों में किया गया। हाकिन नाम का एक अंगरेज़ १५६० ई० में पहले पहल चीनी इंगलेण्ड में वेस्ट इण्डीज़ से लाया। पर १९वीं शताब्दी के पहले तक ग्रेट ब्रिटेन के समस्त टापुओं में चीनी का काम में लाना जारी नहीं हुआ था। ऊख जिस से चीनी निकलती है ८ से २० फुट की लम्बाई तक उगती है। और पत्तियां ५ या ६ फुट तक लम्बी होती हैं। चोकन्दर शलजम या प्याज़ के किसम का सुफेद् रंग का गांठदार होता है। और शकरकन्द् की तरह यह भी धरती के नीचे२ फैलता है। यह जरमनी, फ्रांस, हालेण्ड, बिलजियम, आस्ट्रेलिया आदि कई देशों में बहुतायत से उपजता है और जरमनी में तो इसकी खेती बहुतही अधिक की जाती है। जरमनी से उतर कर फ्रान्स और वेलजियम में इसकी खेती की जाती है। ऊख की तरह इसे भी कल में धर पेरते हैं इसके रस बड़े २ कड़ाहों में उबाल जानवरों की हड्डी के कोइले से साफ करते हैं। मिठास इस चीनी की उतनी नहीं होती जितनी ऊख की चीनी की होती है। जरमनी और अमेरिका के केनडा टापू में एक प्रकार की चीनी अंगूर के रस से बनाई जाती है

उसे बैल के रुधिर से साफ करते हैं। इस समय जरमनी की बनी चोकन्दर वाली चीनी इतना चल पड़ी है कि जो ऐसा ही हम लोगों की शिथिलता उसका प्रचार बन्द करने में बनी रही तो कदाचित् ऊख वाली चीनी बिलकुल उठ जायगी और धीरे २ ऊख की खेती भी बन्द हो जाय तो क्या अचरज। हम लोगों की शिथिलता और विदेशियों के परिश्रम और मुस्तैदी का परिणाम यहां तक देखा जाता है कि चीनी जो आदि में केवल हिन्दुस्तान की पैदावार थी वह दुनिया के प्रायः समस्त देशों में फैल गई और वे लोग निज परिश्रम के बल हम से आगे बढ़ गये। जितनी चीनी जरमनी आदि देशों में पैदा होती है और दूसरे २ देशों में भेजी जाती है उतनी यहां नहीं। अपनी हड़ही चीनी हमे दे चपत मार हम से रुपया छीने लेते हैं और उस चीनी को काम में ला हम पतित और धर्म च्युत होते जाते हैं सो अलग पर कोई इसका खयाल नहीं करता लाचारी है॥

——:o:——

सोशल कानफेरन्स हम क्यों नहीं चाहते।

अब तो इसका समारोह काशी में होही गया हम लोगों ने बहुत कुछ लिखा पढ़ा उसका कोई असर न हुआ हो कैसे! प्रवाह जो बह निकला उसे रोक देना किसकी सामर्थि है। किन्तु हमे हर्ष इस बात का है कि सिवाय दो एक के सहयोगियों में सबी हम से सहमत रहे। हम तो प्रारंभही से इसका प्रतिवाद करते आये हैं नागपूर की कानग्रेस में तिलक महाशय ने बड़े ज़ोर के साथ इसका प्रतिवाद किया था मरहट्टा केम्प में रात भर चांव २ होती रही। पूना में कानफेरेन्स का पण्डाल अलग रचा गया कानग्रेस के पण्डाल में इसका जलसा नहीं होने पाया। पारसाल बाम्बे के कानग्रेस में गइकवार की महा नष्ट स्पीच सुन कौन हिन्दू सन्तान होगा जो "आर्थोडाक्स" कुलीनता का दम भरता हुआ इसका अनुमोदन करेगा। कानफेरेन्स के प्रवर्तक और

अनुमोदन करनेवाले प्रायः वेही हैं जो कुलीनता की प्रथा को खो बैठे हैं और दल या समूह से निकासे हुये हैं जिन्हो ने अपनी नाक कटा डाला है तो वे चाहते हैं कि किसी के नाक रही न जाय। वे चाहते हैं कि हम उछल कर सब नांघ डांक स्वर्ग द्वार पर पहुंच इन्द्र महाराज के सिंहासन पर जा बैठें। यूरोप के देशों ने कई सौ बर्ष के उपरान्त जो तरक्की किया उसे हम दोही चार बर्ष इसी तरह कानफेरेन्स का जलसा कर पा जांय। दूसरे यह कि उनका मानसिक भाव ऐसा मालूम होता है कि हमारे में मुलकी जोश और कौमीयत की ताकत आ जाय इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि हमारे में यह अभिमान बाकी रहे कि हम आर्य जाति हैं हम उन महात्मा ऋषियों के सन्तान हैं हमारी वह श्रेष्ट जाति है जिसमें चार बर्णा की प्रथा है। हम कहते हैं हमारा रूपान्तर हो गया अपने रूप को भूल गये तब हम ने तरक्की ही किया तो क्या। बरन अपने रूप में रह कर जब तरक्की करैं तो उसे तरक्की करना कहैंगे। आर्यावर्त संपादक ने बेतरह हम पर हाथ फेरा है पर वे कदाचित् हमारे भाव को भली भांत समझे नहीं। न हम को इसका खेद है कि हम से उनकी राय मिलती नहीं। उस उतने भाग को उन्हो ने बहुत पल्लवित किया जिसमे हमने काशी के पण्डितों को उत्तेजना दी है। किया चाहैं वह तो उन्हे अभीष्ट ही है अपने रूप के प्रकाश करने में उन्होंने कहीं से कोई कोर कसर न रख छोड़ा। अब हम पूछते हैं हमारे पुराने क्रम बालों मे क्या कोई भलाई हई नहीं? महा अत्याचरण करनेबाले आप के नये क्रम बालों से भी गये बीते हैं। जैसा नये क्रम मे दो एक बड़े विद्वान् वक्ता सुसंयमी और सच्चरित्र हैं और वेही दो एक उनके दल के अगुआ Leader बन रहे हैं उनके ज़ैल में ऐसे २ नार्किक हैं जिनका मुख देखने का पाप है। वैसाही पुराने क्रम में भी दो एक क्या दस पांच ऐसे पवित्र चरित्र बाले निकल आवैंगे जो विद्या और चरित्र में ऋषि तुल्य हैं। इनके ज़ैल बाले उन

नार्किकों से फिर भी कितनी बातों में अच्छे होंगे केवल इतनीही कमी है कि वे अपढ़ हैं। यह न समझिये कि ये पुराने क्रम वालों के अगुआ संशोधन की सामयिक बातों को समझते नहीं किन्तु वे बेचारे निष्किंचन हैं न कि उच्च पद पर हैं हिम्मत और सामयिक शिक्षा भी उनमें नहीं है इस्से आप लोगों के सब ओर के आक्रमण से अपने संकुचित दल को जिस्में प्रति दिन घाटा होता जाता है बचाये रखना यही उनकी पालिसी है। आप लोग विद्या विविध विज्ञान राजकीय शिक्षा उच्च पद प्रतिष्ठा और धन सब में बढ़े हो तो सब कुछ कर सकते हो। यही चाहते हो कि पुराने क्रम वाले उच्छिन्न हो जांय प्रति वर्ष कानफेरेन्स कर गोले चला रहे हो उन्हें हर तरह बनाते हो जैसा तुम्हें भावे करते रहो। तुम अपनी ओर से न चूको होगा वही जो उचित और न्याय है॥

॥ साहित्यआलोचना ॥

। हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा ।

महाराजाधिराज एडवर्ड सप्तम के राजतिलक महोत्सव के अवसर पर यहां की फ़ौज के साथ ठाकुर गदाधर सिंह भी गये थे। उस राजतिलक तथा समुद्र यात्रा के रास्ते में दर्शनीय स्थानों और निर्माणों को उन्होंने ऐसी रोचकता से इस पुस्तक में वर्णन किया है कि एक बार हाथ में उठा लो तो बिना अन्त किये जी नहीं मानता। पुस्तक बहुत अच्छी है पर ठाकुर साहब से इस पुस्तक के बारे में मुझे केवल दो बातें कहना है-एक यह कि अंगरेज़ों की हर एक बातों के मुकाबिले अपने हिन्दुस्तानी भाइयों को तुच्छ समझना उन्हें नहीं सोहता दूसरे भाषा को जहां तक हो सकता यदि सहज

रखते तो बहुत अच्छा होता क्योंकि पुस्तकों के प्रचार का मुख्य कारण सरल भाषा है मूल्य ॥=) है। ——

हरिश्चन्द्र।

निस्सन्देह इस नाम के पुरुष श्रेष्ठ हिन्दुस्तान की भूमि में ऐसे हो गये हैं कि यह कहना कदाचित् अत्युक्ति न होगा कि "चिरकाल तक भारतवर्ष का शिर इनके सबब से ऊंचा रहेगा" और एक बार इनका स्मरण करतेही चित्त गद्गद् हो जाता है—

"जिन श्री गिरधर दास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचन्द्र को, को न नवावे सीस" ॥

धन्य है इस आत्म गौरव युत दीर्घवाद को यह ऐसों ही को सोहता है। भारत भूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी का जीवन चरित्र उन्हीं के फूफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा था पर वह सूक्ष्म व छोटा समझा गया इससे इख़ियारपूर ज़िला आरा निवासी पटना जजी के ट्रान्सलेटर बाबू शिवनन्दन सहायं वर्मा ने इनके जीवन चरित्र को अति विस्तार से लिखा है। ऐसे महाभाग्य का जीवन चरित्र जितना विस्तार से लिखा जाय व जितना उनका गुणगान हो सब थोड़ा है साथ ही और २ बड़े २ प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनी टिप्पणी में दी गई है पुस्तक हिन्दी के प्रेमियों को अवश्य पढ़ना चाहिये। इस पुस्तक की विशेष आलोचना फिर कीजायगी मूल्य १॥) बहुत अधिक है। प्रकाशक को भारतेन्दु बाबू का अनुकरण करना चाहिये था कि "थोड़ा मूल्य रख पुस्तक का प्रचार कराना"—तिस्में ऐसे की जीवनी का प्रचार तो जितना हो उतनाही अच्छा है॥

——

यन्त्री १९०६।

के० वी० रैले कम्पनी हर साल अपने कारखाने की दवाइयों की तारीफ के साथ साल भर की यन्त्री छापते हैं साथही कुछ श्रृङ्गार रस

पूर्ण एक तस्वीर भी रहती है। पर कम्पनी के अध्यक्ष को आज कल स्वदेशी आन्दोलन में तथा रविवर्मा के एक से एक सुन्दर चित्रों के रहते जर्मनी की भद्दी तस्वीरें देना कुछ अनुचित जान पड़ता है — यह यंत्री)॥ का टिकट भेजने से नीचे लिखे पते से मिलेगी। के० वी० रेले कम्पनी जुबिली मेडिकल हाल-बम्बई ॥

भवभूति।

ये संस्कृत के एक सुप्रसिद्ध कवि हैं। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इनकी गिनती कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्षदेव और बाणभट्ट आदि के साथ की है और उनका सीता बनवास इन्हीं के उत्तर चरित का अनुवाद या छाया है। भवभूति के लेख अति विचित्र और मनोहर हैं। विद्यासागर के मत में भवभूति की बड़ी प्रशंसा इस बात में है कि जैसे और २ कवियों ने निष्प्रयोजन तथा बिना अवसर के निज ग्रन्थों में शृङ्गार रस को भर दिया है वैसा भवभूति ने नहीं किया। इस विषय में वे बहुत सावधान रहे। उनने कभी निष्प्रयोजन अपनी रचना में शृङ्गार रस नहीं भरा और प्रयोजन पड़ने पर भी उसे बड़ी सावधानता से निबाहा। एक बात भवभूति की रचना में औरों से विलक्षण पाई जाती है कि दृश्य काव्य के भीतर भी उनने दीर्घ समास और गम्भीर अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग किया है। भवभूति के बनाये तीन प्रसिद्ध नाटक वीरचरित, उत्तरचरित और मालतीमाधव हैं। वीरचरित में वीर रस, उत्तरचरित में करुणारस और मालतीमाधव में शृङ्गार रस दर्साया गया है। इसमें उत्तरचरित में करुणारस दर्साते समय भवभूति ने ऐसी निपुणता दिखलाई है कि निःसन्देह कह सकते हैं कि कालिदास भी उनके सामने मन्द पड़ जाते हैं। ये तीनों नाटक उत्तम हैं पर उत्तरचरित सबों में बढ़ कर है "उत्तरे

रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"। मालतीमाधव की प्रस्तावना में भवभूति इस प्रकार से अपने अहङ्कार का परिचय देते हैं—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते ऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

अर्थात्

जो लोग आदरहिंना रचना हमारी जानैं कहा जतनये तिन लागि नाहीं। मो सो गुणी कतहुं होवइ होइहै वा निःसीमकाल अरु विस्तृत हू धरा है ॥

यदि बिचार पूर्वक देखा जावे तो वास्तव में भवभूति का कहना कुछ अनुचित वा डींग मारना नहीं है उनकी रचना अवश्य आदरणीय है और जो इसे न माने उन्हें अबोध कहना अत्युक्ति न होगी ॥

वीर चरित के प्रारम्भ में भवभूति ने अपना परिचय इस प्रकार से दिया है ॥

दक्षिण देश की ओर (विदर्भ देश में) पद्मपुर नाम का एक नगर है। यहां यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा के अध्ययन करने हारे काश्यप गोत्र में उत्पन्न, धर्म कार्यों में परायण, पंक्तिपावन (पंक्ति अर्थात् भोजनादि करने हारों के समूह को पवित्र करने वाले अर्थात् मुखिया) पञ्चाग्नि (अर्थात् दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य) इन ५ अग्नि के पूजन करने हारे, सोमलता का पान करने वाले, प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी (वेदान्ती) ब्राह्मण बसते हैं। उनके वंश में बाजपेय यज्ञ करने हारे आदरणीय महाकवि गोपाल भट्ट का जन्म हुआ गोपाल भट्ट के पुत्र का नाम नीलकण्ठ और नीलकण्ठ के पुत्र भवभूति हुए।

इनकी उपाधि श्री कण्ठ थी । इनकी माता का नाम जतूकर्णी था । भवभूति ने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि लिखा है ॥

निदान भवभूति के निज वर्णन से निर्णय होता है कि ये विदर्भ देश बरार के रहने वाले थे। बरार में अब पद्मपुर नाम का कोई नगर नहीं है। भवभूति के समय तक बरार की राजधानी कुण्डिनपुर के नाम से प्रसिद्ध थी । दक्षिण देश ही में होने के कारण भवभूति ने उत्तर चरित के द्वितीय अङ्क में दण्डक बन और गोदावरी का वर्णन किया है जो पढ़ने वाले सहृदयों का चित्ताकर्षक है। मालतीमाधव में भी भवभूति ने पाश, लवणा, मधुमती और पाटलावती नदियों का नाम लिखा है । पाश का नाम अब तक वही बना है । पर लोग लवणा को लूण और मधुमती को आज कल की मधुवर बतलाते हैं। पाटलावती का ठीक २ पता नहीं मिलता। भवभूति का 'श्री पर्वत' कदाचित् नीलगिरि की कोई चोटी होगी ॥

भवभूति के प्रादुर्भाव काल के विषय में खोज करने से राजतरङ्गिणी में एक श्लोक मिलता है कि जिसके द्वारा उनका समय निर्णय किया जा सकता है । राजतरङ्गिणी का वह श्लोक यथा--

कविर्वाक्पतिराज श्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितोययौ यशोवर्मातद्गुणस्तुति बन्दिताम् ॥

अर्थात्

सेवत जिहिं कवि वाकपति राज श्री भवभूति ।
जित यश वर्मा बन्दि बनि जासु करी गुणनूति ॥

उक्त श्लोक में कश्मीर के राजा ललितादित्य के प्रताप का वर्णन है कि उसने कन्नौज के महाराजा यशोवर्मा को युद्ध में परास्त किया । भवभूति यशोवर्मा के सभासद थे। कनिङ्गहम साहिब के मत से ललितादित्य ने सन् ६९३ ई० से लेके ७२९ ई० तक कश्मीर का राज्य

भोगा। निदान भवभूति आठवीं शताब्दी ख्रीष्टीय के प्रारम्भ काल के व्यक्ति सिद्ध होते हैं। इन्हीं के समय में जो कवि वाक्पतिराज हुए हैं उनने निज रचित 'गौड़ वहो' नाम ग्रन्थ में भवभूति का उल्लेख किया है। बाल रामायण के रचयिता राजशेखर सन् ७६१ ई० में वर्त्तमान थे और उनके वर्णन से जान पड़ता है कि राजशेखर के प्रगट होने से पहिले ही भवभूति का देहान्त हो चुका था। गोबर्द्धनाचार्य ने भी अपनी सप्तशती में भवभूति की अद्भुत कविता शक्ति का उल्लेख किया है। भोजप्रबन्ध में भी भवभूति का नाम मिलता है। एक कथानक का उल्लेख ऊपर कालिदास के वर्णन में किया जा चुका है कि जिससे भवभूति कालिदास के समकालीन जान पड़ते हैं। पर ये कालिदास रघुवंश आदि के रचयिता से भिन्न होंगे। भवभूति के मालतीमाधव में शकुन्तला का उल्लेख और मेघद्वारा सन्देस भेजने का भाव कालिदास के ग्रन्थों से लिया गया हो तो अचरज नहीं। प्रयाग में त्रिवेणी तट के अक्षयवट का नाम श्याम था ऐसा कालिदास और भवभूति दोनों ने लिखा है। भवभूति के उत्तर चरित में वेदान्त के भाव और विवर्त आदि शब्दों का प्रयोग पाके लोगों ने उन्हें शङ्कराचार्य के समकालीन समझ रक्खा है पर शङ्कराचार्य के पूर्व भी वेदान्त के विवर्त्तवाद की चर्चा होना असम्मत नहीं है। भवभूति के ग्रन्थों से उनके समय में बौद्ध समाज की अवस्था, तान्त्रिकों की दशा, स्त्रीशिक्षा का प्रचार, अन्वीक्षिकी विद्या (न्याय शास्त्र) का पठन पाठन तथा उज्जयिनी के भगवान् कालप्रियनाथ की प्रसिद्धि आदि बातें भली भांति जानी जाती है॥

——

बनारस में २१वां कानग्रेस और प्रदर्शनी।

लखनऊ की कानग्रेस के कई वर्ष उपरान्त युक्त प्रदेश में बनारस में कानग्रेस के समारोह की बारी आई। आहा यह समय बनारस के

लिये कैसा सुहावना था मानो विश्वनाथ जी समस्त देव मण्डली को साथ लिये प्रत्यक्ष हो आ बिराजे थे-लोग बनारस का अर्थ करते हैं "बना हुआ है रस जिसका" कदाचित् और किसी समय रस न भी बना रहा हो किन्तु इस समय तो जितने रस सब साङ्गोपाङ्ग पूरा २ अपना भाव दरसा रहे थे-काशी में सदा से धर्मसम्बन्धी रस प्रधान था पर इस समय अंगरेज़ी शिक्षा और अंगरेज़ी सभ्यता सब में प्रधान थी-सब ठौर गली कूचों तक जिसका जोश छाया हुआ था-सब तरह के कानफेरेन्स सभा सोसाइटी और कमेटी की भरमार थी। जिधर जाओ उधरही तरक्की और उन्नति का शब्द कानों में गूंज रहा था। पण्डाल दूर से ऐसा सोहावना मालूम होता था मानो विश्वनाथ जी का दूसरा स्वर्णमन्दिर हो-गोखले महाशय महादेव के रूप में कुल अपने गणों को साथ लिये पीड़ित भारत भूमि के उद्धारार्थ मानो आ बिराजे थे-एक समय जब भारत भूमि पर बड़ा कष्ट आ पड़ा था तब भगवान् कृष्णचन्द्र ने अवतार ले सबों का उद्धार किया था वैसाही इस समय भी कृष्ण भगवान् के कई नाम गोपाल कृष्ण गोखले मानो इसकी पुकार कर रहे हैं और दुखी भारतबासी मात्र प्रार्थना कर रहे हैं कि भारत का ऐसा कठिन समय कभी न आवेगा अब अपने नाम की सार्थकता दिखलाइये-गौयें बड़ी दुखी हैं गोपाल हो गौओं की रक्षा और पालना करो कृष्ण हो सबों के दुःख का आकर्षण करो गौओं के जो शत्रु हैं उनके साथ खल का सा बर्ताव करो--अथवा गोखले से और भी यह मतलब निकलता है कि गौयें लक्ष्मी हैं गौओं के द्वारा भारत लक्ष्मी का उद्धार करो भारत के लिये कुछ कर दिखाओ तभी आप की लम्बी २ स्पीच झाड़ना सफल है ॥

बहुधा लोग पूछा करते हैं कि इतने दिनों से कानग्रेस हो रहा है इसका कोई फल अब तक न प्रगट हुआ-अस्तु इसके फल तो बहुत से हुये हैं पर उनका विस्तार यहां न कर हम ऐसे भोंड़ी समझवालों को

समझाने के लिये मान लो कि अब किसी का जन्म होता है तो उसके कई संस्कार किये जाते हैं उन संस्कारों में सब से मुख्य बिवाह है कानग्रेस का वह बिवाह संस्कार प्रदर्शनी के साथ किया गया जो कई वर्ष से अर्द्धांगिनी के रूप में इसके साथ २ रहती है—और भी एक कहावत प्रचलित है कि "जो न हुआ बीसा वह का करी पचीसा" ठीक अपने बीसवें वर्ष इस युगल जोड़ी ने एक बच्चा जना जिसका नाम करण स्वदेशी आन्दोलन किया गया और इस अभिनवजात कुमार के लालन पालन का सब बोझ वन्देमातरम् ने अपने ऊपर ओढ़ा--आशा की जाती है यह बालक ज्यों २ बढ़ता जायगा त्यों २ अपने जनक जननी कानग्रेस और प्रदर्शनी की सफलता को पुष्ट करता रहेगा—अब इस बालक को हंसाते खिलाते हुये प्रसन्न रखना हमारे नवयुवक बाबुओं का काम है जिन्हें चाहिये कि होटलों में जा टी का पीना भूल जांय और भारत की तथा अपनी माटी पलीद न करैं। प्राण पण से जहां तक हो सके भारत की माटी को भी बाहर न जाने दें और विलाइत के ढंग की Tea टी पीने के बदले अपनी मा की टी को पीने का दम भरैं—अन्त को इतना हमें अवश्य कहना पड़ता है कि युक्त प्रान्त तथा हिन्दुआनी का केन्द्र काशी के लिये यह बहुत ही लज्जाकर है कि कानग्रेस पण्डाल में एक भी स्पीच हिन्दी में न हुई दूसरे कई एक वालंटियर न जानिये कहां से पकड़ बुलाये गये जिन से लोगों को बड़ा दुख मिला--अंगरेज़ी की ज़रा सी छींक पाये हुये हर दम पतलून के बाहर रहते थे-डेलीगेटों को सुख पहुंचाना और उनके खाने पीने का इन्तिज़ाम तो जो रहा हो अच्छे २ इज्ज़तदार विज़िटरों को ढकेलना और उनके साथ बुरी तरह पर पेश आना यही उन्हें सिखा दिया गया था ॥

इस बार कांग्रेस का समारोह बड़े उत्तम ढंग से ४ दिन में समाप्त हुआ—प्रथम दिन सभापति के अनुमोदन की स्पीच जो आर० सी० दत्त ने बहुत थोड़े में कहा श्लाघनीय थी—उक्त महाशय के कथन का क्रम

बहुत Majestic चटकीला था उपरान्त सभापति की स्पीच भी बहुत सारगर्भित थी--दूसरे दिन कोई स्पीच ऐसी नहीं हुई जिस पर विशेष लक्ष्य किया जाता--तीसरे दिन बायकाट वाले रिज़ोलयूशन का प्रस्ताव करने में पं० मदन मोहन मालवीय की स्पीच बहुत ही सार गर्भित थी--बायकाट का जन्म क्यों हुआ और क्यों लोगों में स्वदेशी वस्तु के वर्त्तने की लाग पैदा हुई इसे मालवीय जी ने बहुत अच्छी तरह कह सुनाया--उपरान्त लाला लाजपतिराय की स्पीच बड़ी उत्तेजक थी जिसे सुन कौन होगा जिसके मन में अपने देश की उन्नति की उत्तेजना न आई हो--प्रदर्शनी यद्यपि बाम्बे और अहमदाबाद की प्रदर्शनी से बढ़ कर न थी किन्तु उन प्रदर्शनियों में बिलाइती चीज़ें भी दिखाई गई थीं इसमें शुद्ध देश की बनी चीज़ें थीं यही इसमें विशेषता थी। प्रदर्शनी को देख निश्चय हो गया कि हमारे प्रति दिन के बर्ताव की वस्तु कोई ऐसी नहीं है जो देश में न बनती हों तब बिलायत की बनी चीज़ों को काम में लाना बड़ी भूल है। पर इसे हमारे अमीर लोग जिन्हें नफासत पसन्द है नहीं समझते--अस्तु अमीर लोगों के मन में नहीं आती वैभवोन्माद में उन्मत्त हैं तो साधारण लोग इसके वर्तने में क्यों न प्रवृत्त हों। बंगाल में तो गांव तक के लोग इसे समझ गये हैं हमारे यहां शहर के लोगों को भी इसके नफा नुकसान का ज्ञान नहीं हुआ तब दिहात के लोग तो दूर रहे॥

एक रिपोर्टर

"सतापसो यः परतापनाशनः
सपण्डितो यः करणैरखण्डितः।
सदीक्षितो यः सकलं सदीक्षते
सधार्मिको यः परमर्म नस्पृशेत्" ॥

तपस्वी वही है जो दूसरे का ताप मिटा सके। सच है जो कुछ तपस्या या धर्म के कार्य हैं सबों का निचोड़ यही निश्चय होता है कि

हम किसी न किसी उपाय से दूसरों का भला कर सकें। जो हम से किसी की कुछ भलाई न हुई तो लम्बी २ जटा बढ़ाय तपस्वी का भेष धरने का यही मतलब है कि दंभ दिखलाय दुनिया को ठगैं--आगे कहता है पण्डित वही है जिसकी इन्द्रियां खण्डित नहीं हुईं अर्थात् जो चंचल इन्द्रियों को चलायमान् होने से रोके हुए हैं--"परोपदेशे-पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्--धर्मेस्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनाम्" दूसरों को उपदेश देने में पण्डित और बुद्धिमान् बनना सबों के लिये सहज है किन्तु अनेक दुख और हानि सह जो वास्तव में धर्म है उस पर चलना कठिन है--कोई ऐसे हैं जो अपनी हानि सहकर उस धर्म का अनुष्ठान करते ही हैं--कहने या सुनने से कर के दिखाने का बड़ा असर होता है इसी से कहता है "धर्मेस्वीयमनुष्ठानम्" फिर कहता है--"सदीक्षितो यः सकलं सदीक्षते"--दीक्षित उसे कहते हैं जो किसी यज्ञ या जप तप आदि की दीक्षा लिये हो और जब तक उसका वह अनुष्ठान पूरा न हो तब तक जो २ नियम उस कृत्य के लिये नियत किये गये हैं उन्हें निबाहै--यहां कहता है दीक्षित उसी को कहेंगे जो सबों को सत् अर्थात् अच्छे भाव से देखता हो। बड़े से बड़े यज्ञ और जप तप आदि की दीक्षा लिये हैं पर चित्त बिमल नहीं है न जानिये क्या २ कुटिल भाव मन में लगा है तो उनको उस दीक्षा का कोई फल नहीं है--हमारा मानसिक भाव ही तो जितनी भलाई या बुराई सब की जड़ है सद्भाव या शुद्ध भाव वालों को उस बड़े ज्ञानी और दार्श-निक से हम अच्छा समझेंगे जो शुष्क तर्क के द्वारा तुम्हें कायल कर तुम्हारा मुंह बन्द कर देसक्ता है पर सद्भाव वाला Earnest नहीं है--विश्वास में "अर्नेस्ट" शुद्ध भाव हो और किसी से द्वेष न रखता हो तो उसको ईश्वर का साक्षात्कार हो जाना सुलभ है और ऐसे ही को हम महात्मा कहेंगे--और देशों की अपेक्षा ऐसे सरल चित्त वाले हमारी भूमि में बहुत अधिक हुये हैं पर अब इस अंगरेज़ी शिक्षा के समय ऐसे लोग

न रह गये न आगे को होंगे क्योंकि अब यह समय दर्शन और विज्ञान की उन्नति का है सद्भाव हमसे निरन्तर तिरोहित होता जायगा ॥

चौथी बात है "सधार्मिको यः परमर्म नस्पृशेत्" धर्मशील वही है जो किसी का मर्मोद्‌घाटन कर पीड़ा न पहुंचावे--ठीक है ईर्षी असूयक काहे का धार्मिक ठहरा जिसको दूसरे का मर्म ताड़न कर ज़ीट उड़ाने की आदत पड़ी है--मर्मोद्‌घन ऐसी बुराई है कि बहुधा लोग जिन का मर्म ताड़न किया गया है दुखी हो अपने जीवन से हाथ धो बैठे हैं ॥

— —

मनोविनोद ।

पं॰ श्रीधर पाठक की कविता के संग्रह का यह दूसरा खण्ड है--इस पुस्तक को पढ़ यही जी चाहता है कि पं॰ श्रीधर को हिन्दी साहित्य के टेनिसन कहैं तो अनुचित न होगा--प्रथम खण्ड जिसमें इनकी फुटकर कविता के ४४ विषय हैं उसका मूल्य ॥) है इस दूसरे खण्ड का दाम ।) है इसमें ३९ विषय हैं ॥

——

सहयोगियों की सहानुभूति ।

हम अपने सहयोगियों के बड़े कृतज्ञ हैं विशेष कर भारतमित्र के जिसने कई बार हमारे पत्र के सम्बन्ध में कई तरह पर लिखा है और अपने पढ़ने वालों से प्रदीप के ग्राहक होने की शिफारिस की है। हम इसके संपादक महाशय को धन्यबाद देते हैं--सच्ची गुण की परख इसी का नाम है धन्य है! उसी कलकत्ते में विश्वोपकारक एक मासिक कुछ दिनों से निकलता है जो हमसे बदला भी नहीं चाहता तो हमारी कदर कहां रही हम भी उससे एकान्ततो निस्पृहः हैं ॥

REGISTERED No. A—308.

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुरजन वायुसों मणिदीप सम थिर नहिं टरै॥
सूझै विवेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥

जि० २८ } प्रयाग { फरवरी
सं० २ } { सन् १९०६ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार

पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से

यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) ——०*०—— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

——:००:——

जि० २८ } प्रयाग { फरवरी
सं० २ } { सन् १९०६ ई०

देशसेवा सम्पत्ति ।

रुपया पैसा राज पाट वैभव प्रभुता आदि सम्पत्ति सुलभ हैं—धन धान्य आदमी के हाथ पांव की मैल हैं—जिनका संचय कुछ कठिन काम नहीं है सहज में मिलने लायक हैं—पर वह सम्पत्ति जिसे देशसेवा कहैंगे उसका मिलना सब के भाग्य में नहीं रहता ऐसे ही कोई बड़ भागी हैं जो इसके अधिकारी होते हैं—जापान और योरप के देशों में इसका सुख बहुतों को प्राप्त है--लार्ड करज़न का भला हो हिन्दुस्तान में बंगाल वालों को इसका स्वाद चखने की शिक्षा दे चले—पंजाब आदि कई प्रान्त के लोगों को भी कुछ २ इसका रस मिलने लगा है—दैवोपहत हतभाग्य एक हमारा ही प्रान्त बच रहा जहां इसका ज़ायका लोगों में फैलता ही

नहीं-पहले पहल जब इसका स्वाद चखने का चस्का लोगों में फैलना आरम्भ हुआ तब यह इतना दुर्घट नहीं था-मुसलमानों के शासन समय गुरू गोविन्द सिंह इसके राह दिखाने वाले गुरुगुरु हो गये-उपरान्त हाल के ज़माने में पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वामी दयानन्द प्रभृति कई एक माननीय पुरुषसिंह इस सम्पति को मन मानता बटोर अन्तर्ध्यान होगये—तब तक यह इतना कठिन काम न था ॥

क्योंकि ऐसे समय जब कि जो राजा है वह प्रजा का नहीं और जो प्रजा का है उसे राजा कब चाहेगा-इस तरह के तुल्य बल विरोध में ऐसा पुरुष दुर्लभ है जो दोनों को राज़ी रख देशसेवा का काम साध सकै-ऐसी सावधानी से काम करने वाले इस समय महामान्य आनरेबुल गोपालकृष्ण गोखले प्रगट हुये हैं या हमारे प्रान्त में मालवीय कुलभूषण हैं—जैसा कहा है ॥

"नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां जाति लोके
जनपदहितकारी त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः ।
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्य कर्ता" ॥

पढ़नेवाले कहेंगे आज इसको क्या खफ़्त सवार है कि पत्र पूरा करने को जो मन में आता है खुराफात बक रहा है-प्रिय पाठक महाशय सो नहीं धन्य हैं वे बड़भागी जो देशसेवा सम्पत्ति के लोभी हैं-देशसेवा आत्मत्याग का अन्तिम छोर है जिसको अपना सर्वस्व अर्पण करने की हिम्मत है उसी से देशसेवा बनती है—जो देशसेवा में प्रवीण हैं वे सब कामों में प्रवीण हो सक्ते हैं उनके सुयश की पताका चारो ओर फहराती हुई देश भर को वे अपना बशंबद सेवक कर लेते हैं स्वच्छन्दता का अटल साम्राज्य इस महापुण्य का फल है-भाग्यवानों को देशसेवा की बुद्धि उपजती है—देशसेवा स्वच्छन्दता के साम्राज्य का अंकुर है ॥

स्वच्छन्दता का साम्राज्य ।

मनुमहाराज ने कहा है--"सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" तुलसीदास का भी कथन है "पराधीन सपनेहु सुखनाही"-सब कुछ जो परअधीन है दुःख है जो स्वतंत्र और अपने वश का है सुख है--हत भाग्य भारत को अपनी स्वतंत्रता गंवाये सहस्त्र वर्ष के ऊपर हो गया तब से इसके दासत्व की शृंखला अधिक २ बढ़ती ही गई पर इधर सौ वर्ष से वह शृंखला इतना जकड़ के कस दी गई है कि हिलना डोलना तक दुशवार हो रहा है--ऐसे समय इस गुलामी की जंज़ीर से छुटकारा पाने को देशसेवा बड़ा सहज लटका हाथ लगा है--दीनवत्सल भगवान् को अपने दीनदयालु इस नाम की सार्थकता यदि मंज़ूर हुई और हमारे दुष्कर्मों का कदाचित् ओर आलगा हो तो इसका अंकुर देश के एक २ आदमियों के मन में जम आना कोई बड़ी बात नहीं है—देशसेवा को मन में अवकाश पाते ही इसकी छोटी बहन देश की ममता और बड़ा भाई देशानुराग चिरकाल के बिछुरे हुये तत्क्षण आ मिलते हैं इस दशा में सहानुभूति बन्धु प्रेम एकमत्य एकत्र हो ऐसा दृढ कुनबा सब मिल जोड़ लेते हैं कि विरुद्ध दल वाले स्वार्थनिष्ठा द्रोह ईर्ष्या फूट अनैक्य आदि फिर वहां ठहरने का साहस नहीं करते–स्वातंत्र्य साम्राज्य के सहकारी ये सब गुण देश में तभी स्थान पाते हैं जब देशसेवा का जोश पैदा हो जाता है–पुरानी तवारीखों को क्यों खोजने जांय हाल में हमारा परोसी जपान इसका उदाहरण मौजूद है--जब यह तै है कि सच्चा सुख केवल स्वतंत्रता ही है तब इसका साम्राज्य स्थापित होना किस अधम को न भावेगा–जिसकी एक मात्र पहली सीढ़ी देशसेवा संपत्ति है बल्कि दोनों का इतना गाढ़ा संबन्ध है कि एक बिना दूसरे के कभी रही नहीं सक्ते–हम अपने वैदिक समय को जो सदा सुमिरा करते हैं और वैदिक समय के ऋषियों को राम

नाम सा रटा करते हैं सो इसीलिये कि उन ऋषियों में देशसेवा का महत्व पाते हैं और जब तक उनके महत्व का अनुकरण हम करते रहे तब तक हमारे देश और जाति का गौरव नहीं घटा--यजु और ऋक् दोनों में ईश्वर से प्रार्थना की अनेक ऐसी ऋचायें पाई जाती है जिन में रोज़ की रोटी मांगने के बदले यही प्रार्थना है कि हे ईश्वर तू हमारे यहां के ब्राह्मणों को ब्रह्मवर्चसवाले पैदा कर क्षत्रियों को राज्य में शूर बाण चलाने में निपुण और महारथी कर--गौवें बहुत दूध देनेवाली और बैल बड़े बोझा ढोनेवाले घोड़े तेज़ी से दौड़नेवाले; स्त्रियां राज्य में पति पुत्रवती हों-- रथी संग्राम में विजय पानेवाले हों; वृष्टि समय २ से हुआ करे औषधियां अच्छी तरह फूलैं फलैं अर्थात् शस्य संपत्ति सदा बढ़ती रहै; प्रजा में योग क्षेम रहै अर्थात् जो नहीं प्राप्त है लोग उसके उपार्जन का देश में प्रयत्न करैं और जो प्राप्त है उसकी रक्षा में प्रवृत्त रहैं--इस तरह का उदारभाव जिसमें देशानुराग भरा हुआ है अनेक ठौर वेदों में दर्शाया गया है और वह सब देशसेवा के सिद्धान्त या उसूल पर कायम है--रोज़ की रोटी और इससे कितना अधिक अन्तर है रोज़ की रोटी का मांगना निरा स्वार्थमूलक है--जहां प्रजामात्र के साधारण रीति पर ऐसे सरल और सच्चे भाव हैं वहां स्वातंत्र्य का साम्राज्य कौन सी बड़ी बात है केवल परमात्मा की प्रेरणामात्र आपेक्षित है--जैसा कहा है—

"नदेवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यन्तु रक्षितुमिच्छति सुबुद्ध्या योजयन्ति तम्"॥

देवता लाठी हाथ में ले लोगों की वैसी रखवाली नहीं करते जैसा गाय बकरी आदि पशुओं का चरानेवाला अपने पशु की रक्षा करता है वरन देवता जिसकी रक्षा किया चाहते हैं उसे बुद्धि देते हैं--हम लोगों का मूल मंत्र गायत्री का भी यही सिद्धान्त है "धियो यो नः प्रचोदयात्"॥

स्वार्थ की सीमा का छोर नहीं है।

प्रिय पाठक बड़े ऊंचे २ ख्यालों की बातें हम आप के साथ बक गये आप हमें शेखचिल्ली न समझे हो तो आसमान के सातवें तबक से ज़रा नीचे को उतरिये और अब अपनी तथा अपने सहबासियों की मौजूदा हालत पर नज़र दौड़ाइये-सातवें तबक से उतरने की मिन्नत हमने इसलिये की कि आप का दिमाग फिर गया होगा कि हम आर्य जाति हैं और उन बड़ों के वंशधर हैं जिन के चरित्र के गान में इसने पत्र के पत्र रंग डाले-"सिद्धि रही सो गोरख लेगये खाक उड़ावें चेले"-आप अभी उसी गुलामी की गिरी दशा में पड़े सड़ रहे हो स्वार्थ के कीड़े आत्मसुखरत दस भाइयों का बनता हुआ काम बिगाड़ केवल अपना भला चाहते हो-उस कूचे की रास्ता पर कभी भटक कर भी आप नहीं जा निकले जहां आपस की हमदर्दी का खज़ाना खुला हुआ है-उदार भाव की हुंडी मतिक्षण सकारी जारही है-शायद यह समझ रक्खा हो हम तालीमयाफ़्ता हैं बड़े २ पोलिटिशन और स्टेट्समेन के उसूलों को हल किये हुये हैं तरक्की की बुनियाद डालनेवाली पोलिटिकल एकानोमी पोलिटिकल साएन्स में डिगरी हासिल किये हैं; खूसट ज़बान हिन्दी देहकानियों की बोल चाल में अनापशनाप गोंच हमें रास्ता दिखलाने और रहनुमाई करनेवाला बना चाहता है-भद्र मुख इस तरह के ख्यालों को जी में जगह न दे ज़रा चित्त की वृत्ति को सावधान कर सोचो तो कि बड़े विद्वान् हो देश का क्या उपकार आपने किया-क्या सोने की कटारी हो तो उस्से पेट चीर लेना होता है? तालीम की झलक से आप में अंगरेज़ीयत बेतरह आ समाई-मूर्ख नासमझ भाइयों पर दया के बदले उनसे घिनाना आपने अलबत्ता सीखा--वह अंगरेज़ीयत कहां तक आ समाई सो कलकत्ते के बाबुओं को देख समझ जाइये-विलाइत के लोगों का अनुकरण तो आपने सीखा पर उनका सा देश वात्सल्य देशी

भाइयों में परस्पर का प्रेम उनका सा आत्मत्याग आदि भले गुण कोई भी न आये-इसका अभ्यास पहले से आप को पड़ा रहता तो इस समय वन्दे-मातरम् की दौड़ न दौड़ना पड़ता--अस्तु सुबह का भूला सांझ को भांत यह दौड़ आपकी सदा के लिये कायम रहती तौभी बड़ी बात रही पर हमें सन्देह है कि यह भाव आप का चिरस्थायी रहे--यही भाव यदि दृढ़ रहा तो स्वार्थ की सीमा बहुत कुछ घट जायगी--अघटित घटना पटीयान् परमेश्वर का यह भी कोई लीलाताण्डव है कि एकबारगी ऐसा नेत्रोन्मीलन तुम्हें मिल गया है, अब भी राह पर न आये तो इसमें सन्देह नहीं देश के दुर्भाग्य हैं--अस्तु इन सुशिक्षितों की चरितावली का गान फिर भी कुछ सोहावना लगता है--जब देश के अधिकांश अपढ़ समाज पर दृष्टि फेरो तो यही कल्पना मन में उठती है कि हमसे कौन सा ऐसा बड़ा पाप बना पड़ा जो ऐसी समाज में हमारा जन्म हुआ--सच है ॥

"वरं शरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु ।
भिक्षार्थमटनं राम नमौढ्यहतजीवितम्" ॥

सुशिक्षा फिर भी बड़ा रत्न है बड़ी बरकत है देश में जो उससे सुशोभित हो गये हैं उन से बहुत कुछ आशा की जासक्ती है पर जिन का मौढ्योपहत जीवन है उन से कोई बश नहीं चलता इसी से हम कहते हैं स्वार्थ की सीमा का छोर नहीं है--उदारभाव जो इसकी सीमा का परिच्छेदक है देश के सुशिक्षितों में भी अभी रुपये में एक आना है तब अपढ़ों का क्या कहना ॥

बात की करामात ।

सोना है; चांदी है; तहखाने सेहखाने खज़ानों से भरे हैं; हीरा जवाहिर कंकर पत्थर की कमी नहीं; न प्रभुता और हुकूमत का ओर

छोर है; एक बार के भ्रूविक्षेप में इधर का सब उधर हो सक्ता है; पदवी और अलकाब जो पूरे २ लिखे जांय तो पत्र की एक फुट जगह छिक जाय, शील और सौजन्य दूसरों के लिये मानो नमूना है; रूप माधुरी का ख्याल कर कन्दर्प का भी दर्प खण्ड २ हो जाता है; मान और प्रतिष्ठा में सब के अगुआ दरबारों में पहले दर्जे की कुरसी पाते हैं; बेटे एक से एक लियाकत में बढ़ चढ़ के हैं नाती पोतों से घर भरा है; आज एक का उपनयन से कल दूसरे का बिवाह परसों तीसरे का कोई दूसरा मंगलकार्य--इस तरह पर कोई साल कोई महीना नहीं जाता जिसमें कुछ न कुछ उत्सव घर में न हो--कहां तक गिनावें भागवानी की पराकाष्ठा है--बात बनी है बराबर पहिया ढुलकती जा रही है--ईश्वर सब का सानुकूल रहे दिन के फेर का असर न पहुंचे बिधाता यदि बाम नहीं है तो सूत का बांधा हाथी रह सक्ता है--विश्वंभर की अपार महिमा का पार कौन पा सक्ता है न जानिये क्यों अकस्मात् पर्वत को राई कर देनेवाली चाल उसे भाई बात बिगड़ गई भाग ने ऐसा पलटा खाया कि सब उलटा होने लगा--सोना चांदी न जानिये कहां बिलाय गया हज़ार कोशिश करते हैं कि बिगड़ी बात फिर बनावें पर एक नहीं सम्हाले सम्हलता जहां मिट्टी छूते सोना होता था वहां उसके विरुद्ध होने लगा--हीरा जवाहिर कांच के भाव बिकना शुरू हो गया जहां किसी की हिम्मत न थी कि आंख मिला सके वहां अब जहां जाते हैं धकियाये जाते हैं कोई बात नहीं पूछता--घर की एक २ ईंट बिक गई लड़के जो लियाकत के पुंज थे शराबखोरी और आवारगी के दृष्टान्त बन बैठे--जिस घर में मगल की गीत और शहनाई की आवाज़ गूंजती थी वहां सियापे की लर नहीं टूटती--रुदन और क्रन्दन ध्वनि छाई रहती है गरमी निकल गई जोशखरोश सब बुत गया कौड़ी के तीन दर २ मारे फिरते हैं--जो घराना साहुत और मेल के लिये प्रसिद्ध था वहां ऐसी फूट छाई कि सब लोग तीन तेरह हो

गये--बात बनी थी तब दूर के लोग भी आय नाता जोड़ते थे अब अपने भी पराये हो गये--सच है ॥

"अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव।
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्" ॥

ईश्वर कुशल करै जिस बात की करामात दिखाने को हम इतना गा गये सो किसी की न बिगाड़े नहीं तो बिगड़ी बात के आघात से बचने को फिर कहीं ठिकाना नहीं है ॥

कुम्भमेला।

हज़ारों आदमियों के मुख से जै गंगे मात गंगे आदि हिन्दू धर्म की प्रौढ़ता के प्रकाशक कर्ण रसायन शब्दों को सुन किस हिन्दू सन्तान के मन में अपने धर्म में श्रद्धा और भक्ति न उपज आती होगी--इस पर हमें अचरज हर्ष तथा विषाद एक साथ पैदा हो सब मिल हमारे चित्त की वृत्ति में एक अनोखा भाव उपजाते हैं--अचरज और हर्ष इसलिये कि जब यह सोचते हैं कि धन्य हैं हमारे पहले के वे ब्राह्मण जिन्होंने न जानिये किस शुभ मुहूर्त में इस ब्राह्मण प्रभुत्व की नेव डाली है कि प्रजा में इसकी ओर से श्रद्धा टूटने की कौन कहै प्रत्युत प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है--भिन्न २ समाज तथा सभा, नये २ धर्म इसके उच्छेद करने में तन मन धन से लग रहे हैं कोई ऐसे नगर या कस्बे नहीं बचे जहां इस तरह की समाज या सभा नहीं कायम है जिसका मुख्य उद्देश्य यही समझा जाता है कि हिन्दू धर्म घटै और ब्राह्मणों की प्रभुता छीन ली जाय-पर उसमें कहीं से अणुमात्र भी घटाव अब तक न पाया गया न इन हिन्दू धर्म के विरोधियों की स्पीच अथवा लम्बे २ व्याख्यानों का कुछ असर पहुंचा--१२ वर्ष पहिले जो कुम्भ हो गया उससे इस बार के

कुम्भ मेले में ज़रा भी कमी न देखने में आई–अब बिषाद इसलिये होता है कि जब हमारी अज्ञ प्रजा की जैसी श्रद्धा इसमें है वैसा हिन्दू धर्म के स्तम्भ स्वरूप ये बड़े २ नामी सन्त महन्त पंडे तथा दूसरे लोग जो हिन्दू धर्म की बदौलत गुलछर्रे उड़ा रहे हैं उनके भीतर पैठ के देखो तो बहुत ही बहुत ढोल में पोल पाई जाती है वरन् ऐसे निषिद्ध आचरण इनके देखे जाते हैं कि कौन विवेकीजन होगा जिसके मन में इनके भीतरी चरित्र देख घिन न पैदा हो जाय--सौ में ५ भी यदि विद्या चरित्र और तपस्या की संपत्ति से संपन्न होते तो किसी को मुंह खोलने का साहस न होता किन्तु इस दशा में तो जो कोई कुछ कहे लाचार हो सुननाहीं पड़ता है—यों तो धर्म का दंभ के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है इसी से बुद्धिमानों ने "धर्मस्य निर्व्याजता" कहा है अर्थात् शुद्ध धर्म वही है जो किसी छल या बहाने से न किया जाय— धर्म का विमल स्थान अकलुषित सरल चित्त है जिस पर दंभ का आवरण होने से उसका शुद्ध रूप नहीं प्रगट होने पाता – विविध भेख धारी इन कई लाख फ़क़ीरों का दल देख यही चित्त में आता है कि उस धरती की कुशल ईश्वर ही करै जिसमें इतने लोग कोई काम न कर दूसरों के उपार्जित धन से चैन उड़ा रहे हैं–दूसरी बात यहां पर यह भी ध्यान देने लायक है कि यह भारत ही का देश है जहां अब भी धर्म का इतना प्रभाव है कि मज़हबी जोश में आय सिन्ध पंजाब बांबे ऐसे दूर २ देश के लोग इतना क्लेश सह और बहुत सा धन खरच पर काल बनाने की आस्तिक्य बुद्धि के अनुयायी हो तीर्थ यात्रा की बुद्धि से यहां आये हैं--इतने लोगों का ख़्याल यदि कहीं मुल्की जोश की ओर झुक पड़े तो न जानिये ये लोग क्या कर डालें पर सो काहे को कभी यहां होगा अस्तु ॥

———

हा !!!

हमारे शुद्ध सनातन वैदिक धर्म में घाटा होते जाना कुछ ईश्वर ही की इच्छा है या पुराने लोगों के कथन के अनुसार कलिधर्म का यह कुछ प्रभाव हो--जिस महानुभाव विरक्त के स्वर्गबास का शोक सम्बाद मैं अपने पढ़ने वालों को सुनाया चाहता हूं वह उदासीन वर्य श्री स्वामी बालक राम जी हैं उक्त स्वामी जी संस्कृत के असाधारण पण्डित और बड़े अच्छे अध्यापक थे--व्याकरण में सिद्धान्त कौमुदी मनोरमा और शेखर पर नई २ उपज की बहुत सी टिप्पणियां इन्होंने तैयार की हैं पर वह अब तक मुद्रित नहीं हुईं--धर्मशास्त्र में गंगास्थिति मीमांसा श्रौत धर्म दो ग्रन्थ इन्होंने लिखकर मुद्रित करा दिये हैं--योग सूत्र पर संस्कृत में एक अलग तिलक की भांति लिखा है और उसी का अनुवाद सरल भाषा में किया है ये सब पुस्तकें छपकर धर्मार्थ बांट दी गई हैं--सांख्यकारिका का अनुवाद भी ये कर रहे थे उसमें सांख्यतत्व कौमुदी की ३० कारिकाओं का तिलक अब तक छप चुका था कि इस समय माघ कृष्ण दशमी को रात के ८ बजे ये महानुभाव सुरधाम सिधार गये--आप यहां कुम्भ के मेले में यात्रा करने आये थे और गङ्गा तट पर जहां और विरक्तों की मण्डलियां पड़ी थीं कल्पबास की इच्छा से रहना स्वीकार किया था--बीमार आप कई महीनों से थे पर बीच में कुछ अच्छे होने लगे थे २ दिन पूर्व कुछ ऐसी शिरोवेदना और ज्वर आप को आया कि वह प्राणान्त ही के साथ गया--आप ने एक ग्रन्थ परिणय समय दर्पण नाम का लिखा है जिसमें बाल्यविवाह के होने से सब तरह की हानि का बहुत अच्छा निरूपण किया है यह ग्रन्थ अभी छपा नहीं--इस से मालूम होता है कि ये विरक्ताग्रगण्य निरे पुराने ही ख्याल के न थे वरन् समाज संशोधन पर भी इनका बहुत कुछ ध्यान था--बारह वर्ष पहले जो कुम्भ का मेला हो गया तब भी ये यहां आये

थे और तब से पढ़ने वाले विरक्त और ब्राह्मणों की मण्डली साथ लिये देशाटन किया करते थे-रामेश्वर और वदरिकाश्रम आदि तीर्थों में इसी तरह बारह वर्ष तक भ्रमण किया और अब यह इनकी इच्छा थी कि मण्डली को तोड़ कहीं एकान्त में निवास कर ग्रन्थ रचना और उपदेशात्मक लेख लिख अपना शेष जीवन समाप्त करेंगे—पर बीच ही में काल कराल इनको निगल बैठा अस्तु इश्वरेच्छा-विरक्त मण्डली में हम ऐसे बहुत कम लोगों को पाते हैं जो इतने परोपकारी विद्वान् और धर्म के सच्चे अनुष्ठान करने वाले हों—कदाचित् इस त्रुटि को पूरी करने वाला दूसरा पुरुष विरक्त मण्डली में न निकलेगा-पण्डित चाहे हों भी पर उपदेशक और स्वयं उस उपदेश पर चलने वाले यही देखे गये ॥

धर्म महासभा ।

बड़े लम्बे चौड़े पण्डाल में २० जेनुअरी शनिबार को इसका समारोह आरम्भ हुआ मंदराज बम्बई पंजाब मध्यप्रदेश मैसूर गुजरात सिन्ध आदि देशों से भिन्न २ संप्रदाय के साधु विरक्त पण्डित और शास्त्री इसमें आये थे जगन्नाथपुरी से गोवर्द्धन पीठ के स्वामी शंकराचार्य भी आये और वेही इस महासभा के सभापति किये गये-मन्ध्यान्होत्तर ३ बजे प्रति दिन इसका जलसा होता था—प्रथम दिन सभापति की वक्तृता के उपरान्त दण्डीस्वामी हरिहरानन्द ने अपनी वक्तृता में अनधिकारी को दान देने के सम्बन्ध में बहुत अच्छा कहा और भी कई एक सामयिक बातें जो धर्म के आभास में महाअधर्म हैं उनको अच्छे ढंग से कहा--हमें बड़ा हर्ष इस बात का है कि साम्प्रदायिक झगड़े बिलकुल इस सभा में नहीं उठाये गये सब लोग एक मत हो शुद्ध धर्म के प्रतिपादन में प्रवृत्त रहे--साम्प्रदायिक विरोध से यह सभा इतनी मुक्त थी कि स्वामी शंकराचार्य के सभापति होने का अनुमोदन रामानुज

सम्प्रदाय के एक परमाचार्य महानुभाव ने किया जो राजा रीवां के गुरुघराने में से हैं--इसी तरह प्रति दिन का कार्य उत्तम रीति से किया गया--सभा का समारोह प्रारंभ होने के पूर्व २४ लक्ष गायत्री के जप का अनुष्ठान और सात दिन निरन्तर रूद्रयाग किया गया काशी से चारो वेद के जानने वाले वैदिक ब्राह्मण बुलाये गये थे--सभा में कई एक लाभकारी मन्तव्य "रिज़ोल्यूशन" पास किये गये जिनमें नगर२ ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत पाठशाला और काशी में विश्वविद्यालय स्थापित करने का भी एक मन्तव्य था जिसे सबों ने मुक्तकण्ठ हो स्वीकार किया--आनरेबुल गोखले का भेजा पत्र जो सभा में पढ़ा गया उससे विदित हुआ कि बम्बई के एक प्रतिष्ठित मुसलमान ने ५ सहस्र रुपया विश्वविद्यालय के लिये देना स्वीकार किया-पत्र में मुसलमान महाशय ने इस बात पर बड़ा हर्ष प्रकाश किया कि अलीगढ़ और बनारस दोनों इङ्गलैंड के आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज हिन्दुस्तान में होंगे-एक जैन संन्यासी ने अपनी स्पीच में विश्वविद्यालय के साथ बड़ी सहानुभूति प्रगट की जिस का अनुमोदन काशी के कई एक शास्त्रियों ने भी किया-इस कार्य के संपादन निमित्त कई एक लोगों ने अपना जीवन समर्पण किया-अब तक ९ लाख की संपत्ति विश्वविद्यालय के लिये इकट्ठी हो चुकी आशा है जल्द इसका आरम्भ कर दिया जायगा-रात को प्रति दिन हरिकथा और संकीर्तन हुआ करता था २७ तारीख से २९ तारीख तक बराबर इसका उत्सव होता रहा-धन्य हैं हमारे मालवीय कुलभूषण ईश्वर ऐसे सत्-पुरुष को दीर्घायु करे लोकोपकार में इनके सदुद्योग की चेष्टा नित्य २ बढ़ती जाय और अपने काम में सदा कृतकार्य होते रहैं-दूसरी प्रार्थना परमेश्वर से हमारी यह है कि वह हमारे ब्राह्मणों का नेत्र खोले, जिस हिन्दूधर्म के पुनरुज्जीवन तथा उसकी कमज़ोरी दूर करने के लिये मालवीय महाशय ने इतना उद्योग किया उसके तत्व को ये समझैं-इस सब का मुख्य उद्देश्य यही है कि हिन्दू धर्म में ऐक्य हो और

सुशिक्षित समाज को वैदिक धर्म की SPIRIT रूह दिखलाई जाय जिस सुशिक्षित समाज के मन में अब तक यही धसा हुआ है कि और धर्मों के समान हिन्दू धर्म भी निरा आडम्बर मात्र है वास्तविक तत्व इसमें कुछ नहीं है ॥

—:o:—

विश्वास और प्रेम ।

किसी ने बहुत ठीक कहा है कि विश्वास मन महा मकरालय की उमंगों के पार जाने को हमारे जीवन जलयान का लंगर के समान है-जैसा बिना लंगर का जहाज़ तूफान में हिलकोरे खाता हुआ किसी चट्टान से टक्कर खा चूर २ हो जाता है वैसा ही मन बिना विश्वास रूई से भी अधिक हलका हो अनेकानेक विपद संकट का सामना करता हुआ हमें सदेह मृत्यु के मुख में जा गेरता है-इतना हीं नहीं वरन् यह भी कि जब तक हम जीते हैं संसार में भार रूप होकर रहते हैं जहां जाते हैं कुत्ता बिल्ली सा दुतकारे जाते हैं अस्तु-

प्रत्येक मनुष्य का यह स्वाभाविक धर्म है कि वह निज हितू मित्र प्रभु वा स्वामी का विश्वासपात्र बना रहा चाहता है-मालिक मुझ पर विश्वास रक्खे यह वह सदा चाहता है और भरसक इसके लिये यत्न करता है-पत्र व्यवहार में नये क्रम के अनुसार अन्त में लिखते हैं "आपका विश्वासपात्र अमुक" किन्तु ऐसा लिखने से लिखने वाला सच २ विश्वासपात्र बन जाता है यह विचार करने योग्य है-हमारी समझ में तो यह नई सभ्यता की एक परिपाटीमात्र है क्योंकि ऐसे मनुष्य बहुधा कम देखे जाते हैं जो केवल इतनाही लिख देने पर आंख मूंद उसका विश्वास कर लें-मनुष्य किसी का विश्वासी बनने में दो प्रयोजन रखता है एक अपने निज का स्वार्थ दूसरा उसी को कुछ लाभ पहुंचाना जिसका वह विश्वासी बनता है-जो सरल स्वभाव के हैं उन का

विश्वास चिरस्थायी रहता है पर जो खोटे और कपटी हैं उनको पहले तो किसी पर विश्वास होता ही नहीं हुआ भी तो बहुत ही क्षणिक-जो मनुष्य चरित्र का शुद्ध है जैसा समझता है वैसाही करता है बनावट का लेश भी अपने में नहीं रखता वह थोड़े ही में सब का विश्वासपात्र हो जाता है उसे लोग आप्त समझने लगते हैं--किन्तु जो मतलब का यार है अपना मतलब गांठने को विश्वासपात्र बना चाहता है वह तभी तक विश्वासपात्र बना रहता है जब तक उसका मतलब नहीं गंठा--जो मतलब को गांठ बांध विश्वास दिलाना चाहता है वह निश्चय विश्वासघाती है एक न एक दिन गला काटेगा-ऐसे का कोई साथ नहीं देता न कोई उस से प्रेम रखता है--चाहो कुछ समय तक जब लों उसका खोटापन छिपा रहा कई एकों का विश्वासपात्र वह बना रहा हो पर जब उसकी वह खोटाई उघर पड़ैगी तब उसे कोई पूछैगा नही पूछना तो दूर रहे उसकी ओर कोई चितवैगा भी नहीं-जो सदाचारवान् हैं मन वच कर्म से जिनका व्यवहार और बर्ताव शुद्ध और निष्कपट है वे आप से, आप दूसरों के विश्वाशपात्र बन जाते हैं और सब लोग उन्हें प्यार करते हैं ऐसे महापुरुष समाज की शोभा हैं ॥

विश्वास के उपरान्त प्रेम का उदय होता है प्रेम और विश्वास दोनों में कुछ ऐसा परस्पर का सम्बन्ध है कि बिना विश्वास के प्रेम नहीं न बिना प्रेम विश्वास दृढ़ मूल हो ठहर सक्ता है-सच पूछो तो प्रेम का पन्थही बिल्कुल निराला है प्रेमी अपने प्रेमपात्र का विश्वास कर लेता है प्रेम में अन्धा हो यह नहीं सोचता कि इसका विश्वास हमें करना उचित है वा अनुचित-पर यह क्रम विचारवानों का नहीं है विचारवान् पहले मनुष्य को अपने विचार की कसौटी में कस तब उस का विश्वास करते हैं विश्वास हो जाने उपरान्त वह उनका प्रेमपात्र बनता है-पर जहां विचार नहीं है किसी कारण केवल प्रेम ही प्रेम है

वहां बादलों में बिजली सा प्रेम पहले दौड़ जाता है तब विश्वास उस प्रेम का फल फूल के समान फलता और फूलता है-किन्तु वह मनुष्य उस अपने प्रेमी को छोड़ सर्व साधारण का विश्वासपात्र नहीं कहा जा सक्ता तस्मात् प्रेम के कारण जो विश्वास होता है उस विश्वास की कोई प्रतिष्ठा नहीं न उस प्रेम ही की अधिक सराहना है जो विश्वास की कसौटी में बिना कसे हो गया ॥ अनन्तराम पांड़े रायगढ़ ।

——

नये ढंग के पंचपातक ।

बीसवीं सदी की सभ्यता के ज़माने में सभी अपना २ दल बढ़ा रहे हैं और तरक्की कर रहे हैं-इस सूत्र के अनुसार पातकों ने भी अपनी तरक्की पर कमर कस लिया और ब्रह्मवध सुरापान स्तेय आदि ५ महापातकों के होते भी अभी बहुत से नरक खाली पड़े हैं उनको भरने के लिये पंच-पातकों में ये ५ पातक और अनुस्यूत से देख पड़ते हैं-और वे अनुस्यूत पातक ये हैं १ कर्मचारियों की हां में हां २ पातक के पुञ्ज अमीरों की खुशामद ३ जोरू की गुलामी ४ घुने ख्याल वाले बूढ़ों को पैरवी ५ दूध मुहे स्तनन्धय छोटे २ गेदों को ब्याह के आंख का सुख-आशा है इन अनुस्यूत पातकों की सृष्टि होने से वे नरक सब अब भर जांयगे ॥

——

पांच महाविष ।

संसार शब्द के कई अर्थों में संसृति अर्थात् आवागमन भी इसका एक अर्थ है तब पंचामृत ५ अमृत की कल्पना संसृति का बड़ा बाधक जान संसृति के परिचालक विधाता ने यह सोचा कि पंचामृत पान कर सबी अमर हो बैठेंगे तो हमारा यह संसार काहे को चलैगा-इसलिये उसने ५ महाविषों को पैदाकर उन विषों को आज्ञा दिया कि तुम जाय भारत में घर २ अपना दखल जमाओ-उद्भिज अण्डज स्वेदज